सागर

महासागर, विशेषकर भारतीय
उपमहाद्वीप को घेरे सागरों से संबन्धित
एक लघु पुस्तिका

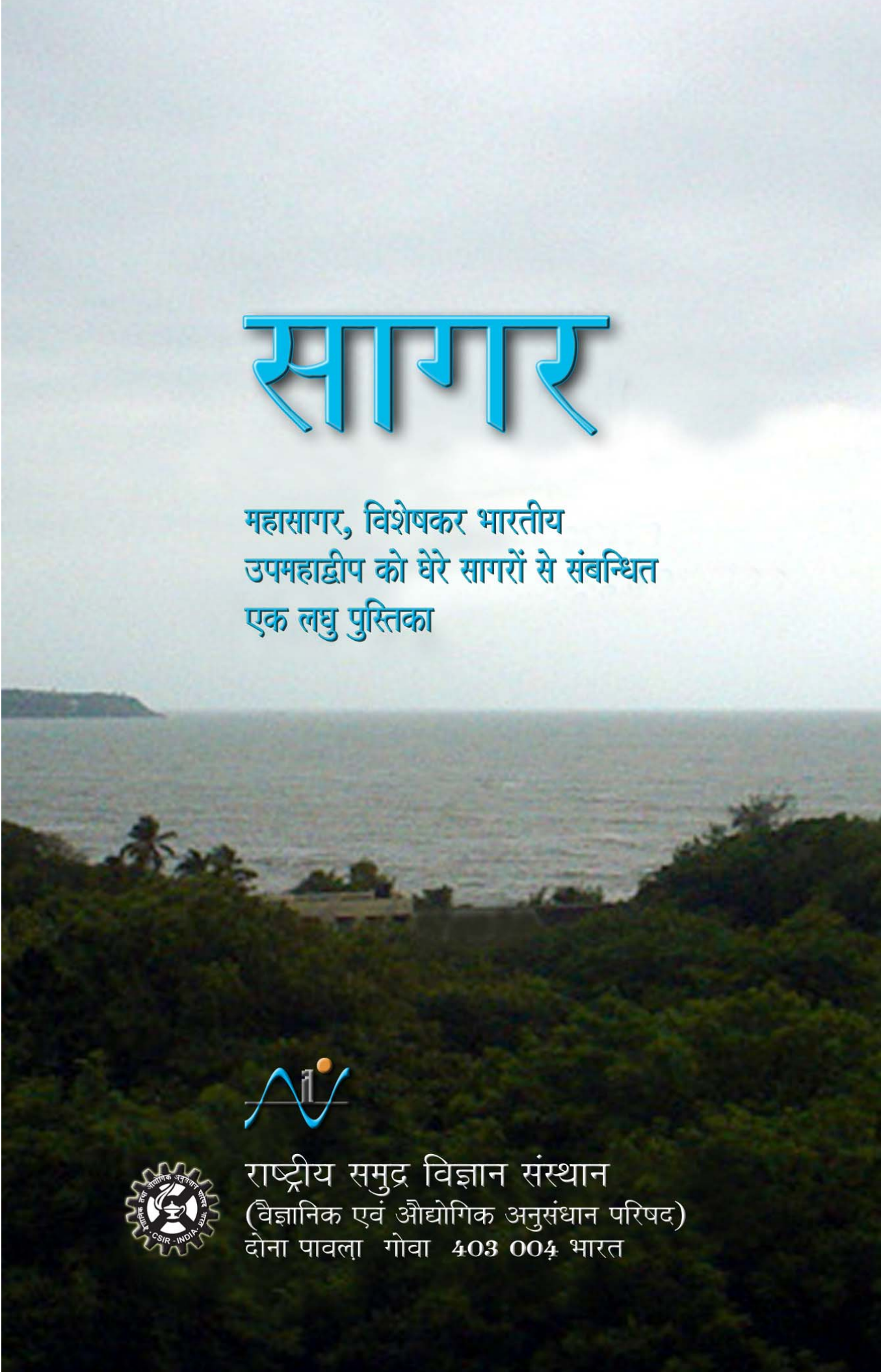

राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान
(वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद)
दोना पावला गोवा 403 004 भारत

प्रस्तावना

प्रिय पाठक,

सागर अनुसंधान को समर्पित विश्व के इस भाग का सबसे बड़ा और सबसे पुराना राष्ट्रीय समुद्रविज्ञान संस्थान समुद्रविज्ञान में रुचि रखने वाले सब व्यक्तियों को, विशेष रुप से विद्यार्थियों को, आकर्षित करता है। संस्थान के लघु भ्रमण से इस क्षेत्र की केवल एक झलक ही मिल सकती है। यह पुस्तिका, ''सागर'', आगंतुक की, संस्थान के भ्रमण के बाद भी, सागरों के लुभावने संसार में रुचि बनाए रखने के उद्देश्य से तैयार की गई है।

'' सागर'' में समुद्रों के निर्माण, उनके अभिलक्षणों और उनके निर्माण में सक्रिय, गतिशील, कारकों के बारे में एक रुपरेखा प्रस्तुत की गई है। विशेष रूचि रखनेवाले पाठको के लिए इस विषय पर अधिक ज्ञान पाने हेतू पुस्तको एवं वेबसाईट की सूची भी दी है।

हमें विश्वास है कि समुद्रों के बारे में अधिक ज्ञान पाने के लिए '' सागर'' आपका साथी सिद्ध होगा।

शुभकामनाओं सहित।
राष्ट्रीय समुद्रविज्ञान संस्थान

श्यामसुन्दर शर्मा, (भूतपूर्व), सम्पादक '' विज्ञान प्रगती '', द्वारा अंग्रेजी भाषाकी सागर पुस्तिका का हिन्दी रूपान्तर किया गया तथा संस्थान की ओर से इसमे सम्पादकीय सुदार किये गये है।

मुखपृष्ठ: राष्ट्रीय समुद्रविज्ञान संस्थान, दोना पावला, गोवा के प्रांगण से अरब सागर का एक दृश्य। जुआरी नदी का मुख बांयी तरफ है।

भारतीय उपमहाद्वीप को घेरे सागरों से सम्बन्धित

एक लघु पुस्तिका

✻ विषय सूची ✻

क्रम संख्या	पृष्ठ संख्या
१. सागर : आकार, आकृति और बेसिन	४
२. पृथ्वी की आंतरिक संरचना और उसकी बाह्य प्लेटें	५
३. महासागर की तलहटी	६
४. समुद्र स्तर में दीर्घकालीन परिवर्तन	८
५. समुद्री पानी	९
६. चंचल महासागर	११
७. महासागर और जलवायु	१२
८. बंगाल की खाड़ी के तूफान	१५
९. पवनजन्य लहरें	१६
१०. ज्वार भाटा	१७
११. सुनामी	१८
१२. पुलिन	१९
१३. भारतीय तटों के साथ ज्वारनदमुख	२०
१४. पृथ्वी पर जलचक्र	२१
१५. समुद्री पानी में तत्व कहाँ से आए ?	२२
१६. समुद्री पानी के प्रमुख तत्व	२३
१७. समुद्री पानी के गौण तत्व	२४
१८. समुद्री पानी की संयोजन क्यों नहीं बदलती ?	२४
१९. महासागरों में, विशेष रूप से उसके ऊपरी परतों में, जीवन	२५
२०. गहरे सागर में जीवन	२९
२१. तटीय समुद्री पर्यावरण	३०
२२. महासागरों में जैवविविधता	३१
२३. सागर में खनिज तत्व	३१
२४. कैसे करते है हम महासागरों का अन्वेषण?	३४

चित्रों और आंकड़ों के स्रोत

चित्र-१० जिओलॉजिकल-जिओफिजिकल एटलस ऑफ इंडियन ओशन, परगामन प्रेस, आक्सफोर्ड, यू.के. १९७५

चित्र-२४ और २७ वेव्ज, टाइड्स एंड शैलो-वाटर प्रोसेसेज, द ओशनोग्राफी कोर्स टीम, द ओपन यूनीवर्सिटी, बटरवर्थ, हीनेमान, ऑक्सफोर्ड, यू.के. १९९९, से रूपांतरित

चित्र-२९ http:/www.mos.org/oceans/planet/cycle.html

चित्र-१२, २० और २२ के लिए ताप डाटा एस्. लेवीट्स और टी. पी. बोयर, NOAA एटलस, NESDIS ४, १९९४

चित्र १३ के लिए लवणता आँकड़े, एस. लेवीटस, आर. बारगेट और टी.पी. बोयर, NOAA एटलस, NESDIS ३, १९९४, से

चित्र-१७ और २१ के लिए पवन आँकडे : यू.एस. नेवी से

चित्र-१८ के लिए जलधारा आँकड़े , NOAA, USA

चित्र-१९ और २८ के लिए सागर तल आकड़े , सर्वे आफ इंडिया, देहरादून

चित्र-२१ और २३ के लिए वर्षा के आँकड़े , पी. एक्सी और पी. ए. अरकिन, बुलेटिन आफ द अमेरिकन मीटीओरालाजिकल सोसायटी, खंड ७८, पृष्ठ २५३९-२५५८, १९९७

सागर : आकार, आकृति और बेसिन

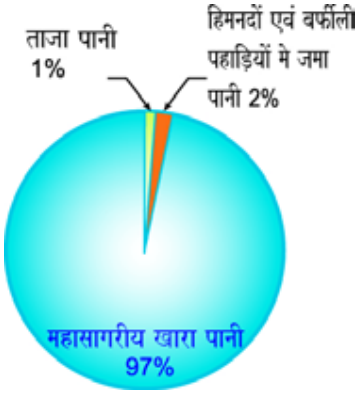

चित्र-१ : पृथ्वी पर पानी का वितरण

महासागर एक प्रकार का अपारंपरिक जलाशय है जिसका क्षैतिज (हॉरीजॉंटल) विस्तार हजारों किलोमीटर है परंतु ऊर्ध्वाधर (वर्टीकल) विस्तार सामान्यत: ४ किलोमीटर से भी कम। यदि हम पृथ्वी की एक मीटर व्यास की, यथार्थ प्रतिकृति (रेप्लिका) बनाएं, तब उसमें सागरों की गहराई एक मिलीमीटर से भी कम होगी।

सागरों को, अपनी सुविधा के लिए हिन्द, अटलांटिक, प्रशांत, आर्कटिक और दक्षिणी (अंटार्कटिक) महासागरों में,बांटा जाता है (चित्र-२)। हिन्द महासागर अफ्रीका के पूर्वी तट और

पृथ्वी की त्रिज्या लगभग ६३०० किलोमीटर है। उसके लगभग ७१ प्रतिशत भाग को महासागरों ने घेरा हुआ है जिनकी औसत गहराई ३७०० मीटर है और पृथ्वी के कुल जलभंडारों में से ९७% भाग महासागरो में होता है। (चित्र-१)। बाकी ३ प्रतिशत जल, मीठा जल है जिसका एक तिहाई भाग द्रव के रूप में है और बाकी हिमनदों और ध्रुवीय बर्फ-छत्रकों में, बर्फ के रूप में, जमा हुआ है।

चित्र-२ : पृथ्वी के महासागर

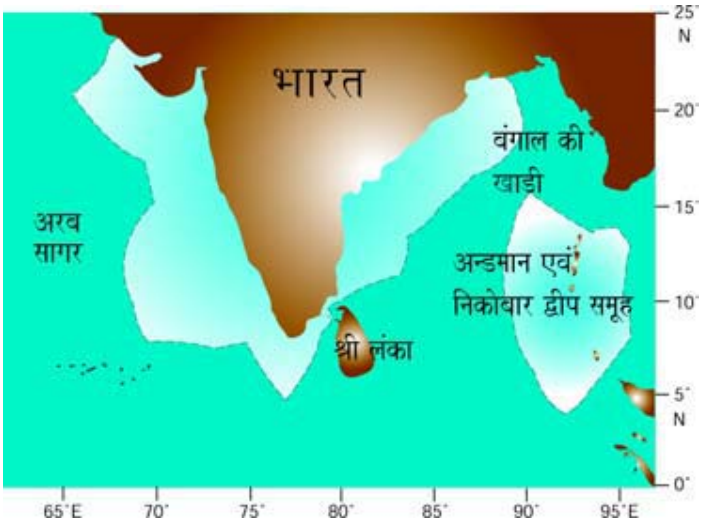

चित्र-३: अरब सागर और बंगाल की खाड़ी सहित उत्तरी हिंद महासागर। हल्के नीले रंग का क्षेत्र भारत का अनन्य आर्थिक क्षेत्र दर्शाता है जिसका क्षेत्रफल लगभग २० लाख वर्ग किलोमीटर है जो भारत के थल क्षेत्र का लगभग ६०% है। द्वीप समूहों की तटरेखा सहित भारत की कुल तटरेखा लगभग ७००० किलोमीटर लंबी है।

आस्ट्रेलिया के पश्चिमी तट के बीच फैला हुआ है। उसके उत्तर में एशिया का दक्षिणी भाग है और दक्षिण में दक्षिणी महासागर। हिन्द महासागर के उत्तरी भाग में अरब सागर (भारत के पश्चिम की ओर) और बंगाल की खाड़ी (भारत के पूर्व की ओर) शामिल है।

तटीय देशों के लिए, उनके निकट के सागर का, एक निश्चित भाग उनके अन्वेषण और उपयोग हेतु रेखांकित कर दर्शाया गया है। यह क्षेत्र ''विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र'' (एक्सक्लूसिव इकोनोमिक जोन - ई.ई.जैड) कहलाता है (चित्र-३)। यदि द्वीप भी किसी देश के अंग होते हैं तो वे उस देश के विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र में बहुत वृद्धि कर देते हैं। हमारे देश के साथ भी ऐसा ही है। लक्षद्वीप और अंडमान-निकोबार द्वीप समूहों के कारण हमारे देश के विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र में काफी वृद्धि हुई है।

अरब सागर में स्थित लक्षद्वीप ३६ द्वीपों का एक समूह है जिनमें से केवल १० में ही आबादी है। ये कोरल द्वीप सागर सतह के समोच्च स्थिती में हैं। इनका सबसे ऊँचा भाग भी सागर सतह से केवल कुछ ही मीटर पर है। हमारा दूसरा द्वीप समूह - अंडमान-निकोबार समूह - बंगाल की खाड़ी में स्थित है। इसमें ५५४ द्वीप हैं जिनमें से कुछ तो केवल बड़ी चट्टानें ही हैं। यदि ऐसे द्वीपों को अलग कर दें तब इस समूह में २९४ द्वीप बचते हैं जिनमें से केवल ३६ द्वीपों में आबादी है। अंडमान-निकोबार समूह के द्वीपों का उद्‌गम विवर्तनिक प्रक्रमों (टेक्टोनिक प्रोसेस) के कारण हुआ है। सागर की तलहटी के नष्ट होने से संबद्ध भूवैज्ञानिक घटनाओं के परिणामस्वरूप इन द्वीपों का निर्माण हुआ था।

पृथ्वी की आंतरिक संरचना और उसकी बाह्य प्लेटें

ब्रह्मांड का निर्माण महाविस्फोट (बिगबैंग) के साथ, अब से लगभग १४ अरब वर्ष पूर्व हुआ था। सौर परिवार और पृथ्वी लगभग ४.५ अरब वर्ष पूर्व बने थे तथा पृथ्वी पर जीवन का आरम्भ लगभग ३.५ अरब वर्ष पूर्व हुआ था। प्रथम एक अरब वर्षो के दौरान पृथ्वी पर खगोलीय पिंडों के लगातार गिरते रहने से बहुत अधिक विक्षोभ अनुभव किए गए जिसके कारण वह अग्नि के गोले के समान दिखाई देती थी।

चित्र-४ : पृथ्वी की आंतरिक परतें

पृथ्वी तीन प्रमुख परतों से बनी है : पपड़ी, प्रवार (मैंटल) और क्रोड (चित्र-४)। महासागरों के नीचे सबसे ऊपरी भाग पपड़ी की जिसकी मोटाई

लगभग ५ किलोमीटर तथा महाद्वीपों के नीचे औसतन लगभग ३० किलोमीटर होती है। पपड़ी के नीचे स्थित है प्रवार (मैंटल) - अर्द्धठोस चट्टानों की सघन, गर्म, परत जो लगभग २९०० किलोमीटर मोटी है। पृथ्वी के केन्द्र के इर्द-गिर्द स्थित है क्रोड जिसके दो स्पष्ट भाग हैं : बाह्य क्रोड और आन्तरीक क्रोड। बाह्य क्रोड द्रव रूप में है और उसकी मोटाई २२०० किलोमीटर है जबकि आंतरिक क्रोड १२५० किलोमीटर मोटा और ठोस है। जब पृथ्वी अपने धुरी पर घूमती है तब बाह्य द्रव क्रोड भी उसके साथ घूमता (स्पिन) है जिससे पृथ्वी का चुब्बकीय क्षेत्र उत्पन्न होता है।

चित्र-५ : प्रमुख स्थलमडलाय प्लट

पृथ्वी की बाहरी दृढ़ परत (लगभग ७०-१०० किलोमीटर मोटी) जो पपड़ी और प्रवार (मैंटल) का सबसे ऊपरी भाग है, अनेक प्लेटों में बटी हुई है। इनमें से १२ प्रमुख हैं जैसे : उत्तर अमेरिकी, दक्षिण अमेरिकी, अफ्रीकी, भारतीय, यूरेशियाई आदि। ये पृथ्वी की सम्पूर्ण सतह को आच्छादित करते हैं (चित्र-५)। ये स्थलमंडलीय (लिथोग्राफिक) प्लेटें तीन प्रमुख भूवैज्ञानिक कारकों : (१) मध्य-महासागरीय पर्वत श्रृंखला, (२) अवतलन क्षेत्र (सबडक्शन जोन) और (३) रूपांतरित भ्रंश (ट्रांसफार्म फॉल्ट) में से किसी एक से घिरी हुई हैं। प्लेटों की सीमाएं संकरी विरूपण (डिफार्मिंग) क्षेत्र हैं जो भूकम्पनो से सक्रिय हैं परंतु स्वयं प्लेटों के भीतरी भाग दृढ़ हैं। पृथ्वी की सतह पर प्रत्येक प्लेट अन्य प्लेटों के संदर्भ में गतिक्षम रहती है। प्लेटों की इस प्रकार की गति मध्य महासागरीय पर्वत श्रृंखला में नई पपड़ी उत्पन्न करती है, अवतलन क्षेत्रों में पपड़ी को भूगर्भ में ले जाती है और ट्रांसफार्म भ्रंशों के साथ उसे संरक्षित रखती है (चित्र-६)। प्लेट सीमाओं पर होने वाले निर्माण और विनाश के सामान्य प्रक्रमों के अतिरिक्त प्लेटों पर अन्य क्रियाएं भी होती हैं जैसे वे टूटती हैं और आपस में जुड़ती भी रहती हैं।

अतीत में महाद्वीपीय थलखंड टूटे हैं (चित्र-७) और अन्य थलखंडों से टकराए हैं। इससे यदि नए सागरों का निर्माण हुआ तो कुछ प्राचीन सागर लुप्त भी हो गए। अब से लगभग २२.५ करोड़ वर्ष पूर्व भारत एक बड़े द्वीप के रूप में आस्ट्रेलियाई तट के निकट टेथिस नामक एक

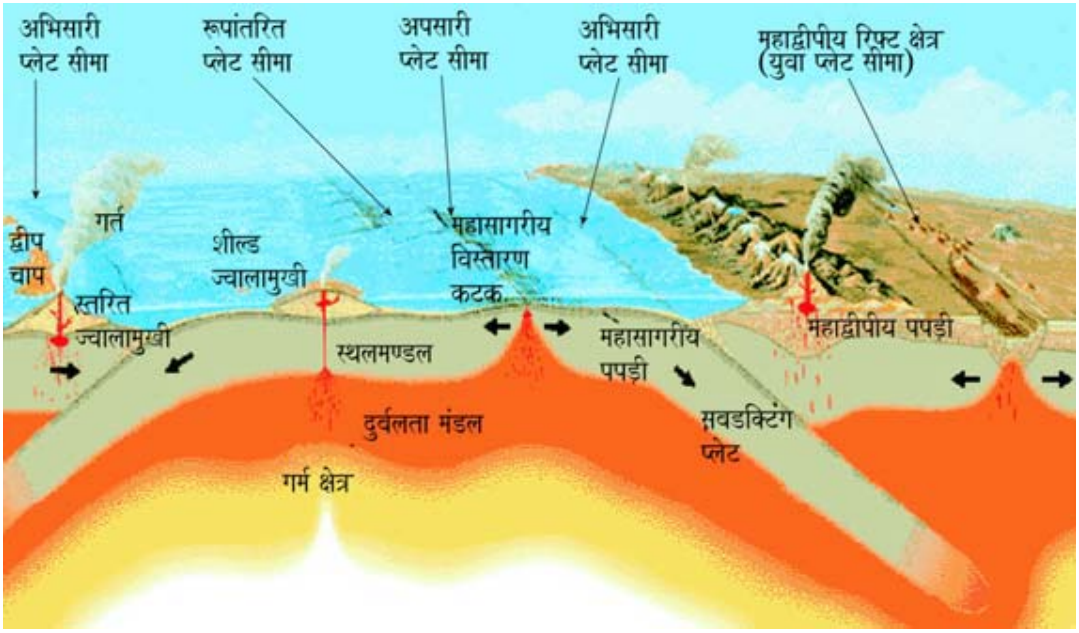

चित्र-६ : स्थलमंडलीय प्लेटों का निर्माण और विनाश

विशाल महासागर में स्थित था। उस समय वह एशियाई महाद्वीप से जुडा नहीं था। फिर भारतीय उपमहाद्वीप ने उत्तर की ओर सरकना प्रारम्भ किया और अब से लगभग ४ करोड़ वर्ष पूर्व एशियाई थलखंड से जा टकराया। उससे घटनाओं की एक श्रृंखला प्रारम्भ हुई जिसके परिणामस्वरूप तिब्बती पठार और हिमालय की पर्वतमाला का निर्माण हुआ (चित्र-८)। अब से करोड़ों वर्ष पूर्व आरंभ हुआ यह दो बृहत थलखंडों का सीधा परन्तु विलक्षण टकराव आज भी जारी है। इस टक्कर के फलस्वरूप हिमालय जैसे पर्वतों और माऊंट एवरेस्ट जैसी चोटियों का निर्माण और ऊपर उठने की क्रिया आज भी जारी है। माउंट एवरेस्ट चोटी आजतक लगभग ९ किलोमीटर ऊँची उठ चुकी है और अब भी ऊपर उठती जा रही है। हिमालय अब भी एक सेन्टीमीटर प्रति वर्ष से अधिक की दर से ऊँचा उठ रहा है।

चित्र-७ : दक्षिण ध्रुव के पास भूकालिक अतीत में (लगभग २२.५ कराड़ वर्ष पूर्व) महाद्वीपों का विघटन

महासागर की तलहटी

महासागर की तलहटी को महाद्वीपीय मार्जिन और गहरे सागर की तलहटी में बांटा जा सकता है। महाद्वीपीय मार्जिन में महाद्वीपीय शेल्फ (कॉन्टीनेन्टल

शेल्फ), महाद्वीपीय ढ़लान (कॉन्टीनेन्टल स्लोप) और महाद्वीपीय उत्थान (कॉन्टीनेंटल राइज) शामिल होते हैं (चित्र-९)। महाद्वीपीय शेल्फों की स्थलाकृति (टोपोग्राफी) सपाट (ढाल प्रवणता ०.१°) है और औसतन गहराई लगभग १३० मीटर। उन पर थलजन्य पदार्थ और जीवजनित कार्बोनेट बहुतायत से जमा होते रहते हैं। महाद्वीपीय शेल्फ को लगभग २०० मीटर गहराई पर महाद्वीपीय ढलान से अलग करते हैं शेल्फ-प्रतिरोध (शेल्फ ब्रेक)। महाद्वीपीय ढलान की प्रवणता (औसतन ४°) महाद्वीपीय उत्थान की प्रवणता से बहुत अधिक है जो केवल १° होती है। महाद्वीपीय शेल्फ और महाद्वीपीय ढलान, दोनों मिलकर, महासागर के कुल क्षेत्रफल का लगभग १५ प्रतिशत भाग को घेरे हुए हैं जबकि महाद्वीपीय उत्थान लगभग ५ प्रतिशत भाग। महासागर की तलहटी के वितलीय (अबिसल) मैदानों का ढलान बहुत कम - सैकड़ो किलोमीटर तक प्रवणता मात्र ०.००१° होता है। लगभग ४२ प्रतिशत गहरे सागरों की तली सपाट है।

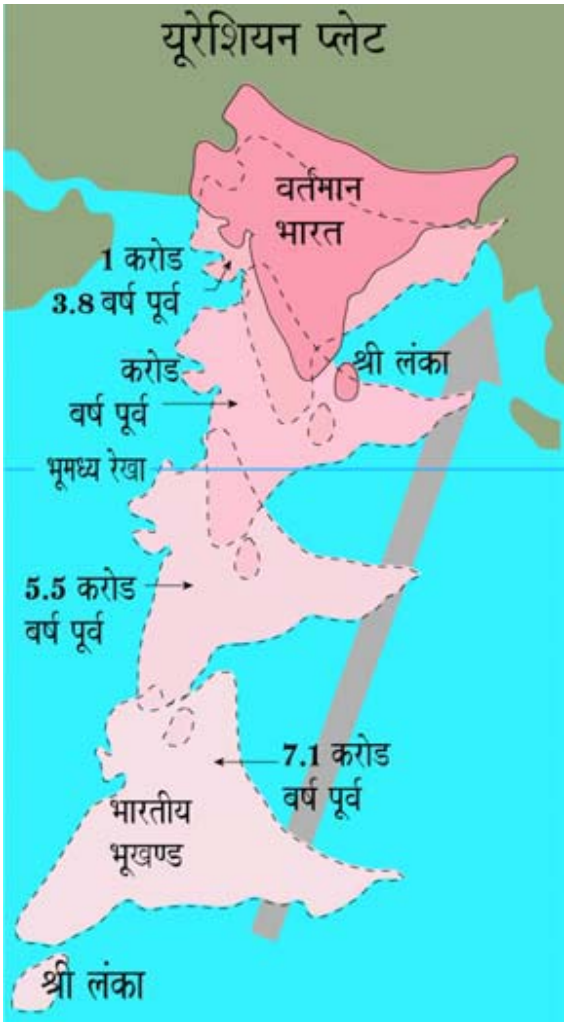

चित्र-८ : भारतीय उपमहाद्वीप का उत्तर की ओर स्थानान्तरण

गहरे सागरों की तलहटी पर एक किलोमीटर से भी अधिक ऊँचे उभार वाले समुद्री टीले होते हैं। ये टीले दो किस्मों के सपाट शीर्ष वाले (गाईहोट) और चोटी वाले - होते हैं। इनकी ऊपरी सतह पर, जीवाश्म, कोरल, फास्फोराइट और कोबाल्ट - बहुल मैंगनीज पपड़ी होने की अपेक्षा होती है। मध्य महासागरीय पर्वत श्रृंखलाएं महासागर बेसिनों की उत्थित भूआकृतियाँ हैं और वे नए समुद्री

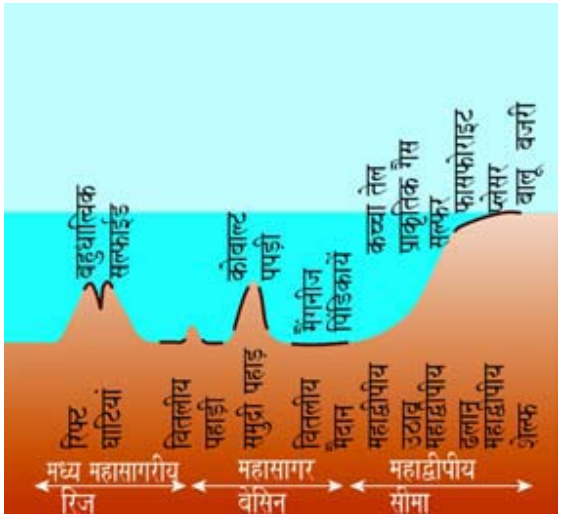

चित्र-९ : सागर की तली के भूआकृतिक लक्षण और संबद्ध खनिज जमावटें

स्थलमंडल (लिथोस्केया) की निर्माण का स्थल हैं। यहाँ से प्रवार (मैंटल) बनने का पदार्थ बाहर निकलता रहता है। सागर की तलहटी के फैलने और प्लेटों की गतिविधियों के परिणामस्वरूप यहां सागर का पानी ताजे मैग्मीय पदार्थ के संपर्क में आता है (चित्र-५ और ६)। यह पानी नवनिर्मित गर्म चट्टानों के इर्दगिर्द परिसंचरित होता है। जिस कारण ''गर्म पानी के झरने'' उत्पन्न हो जाते हैं जैसे थल पर होते हैं। इन झरनों के गर्म पानी का ताप ४००° सै. तक भी पहुँच सकता है (जबकि इन स्थलों पर समुद्री पानी का परिवेश ताप १-३° सै. तक ही होता है) और यह गर्म पानी सागर की तलहटी की दरारों को तोड़कर निकल पड़ता है। इन दरारों को उष्णजलीय मुख (हाइड्रोथर्मल वेंट) कहा जाता है।

भूमंडल पर फैले हुए मध्य महासागरीय पर्वत श्रृंखला की लम्बाई लगभग ७४,००० किलोमीटर है। साथ ही तली में (महाद्वीपीय ढलान के नीचे) ''V''आकृति की गहरी खाईयाँ हैं। ये खाईयाँ सामान्यत: अवतलन क्षेत्रों में पायी जाती हैं जहां महासागरीय प्लेटें महाद्वीपों अथवा द्वीप चापों से टकराती हैं। इन खाइयों में सबसे गहरी (लगभग ११ किलोमीटर) है प्रशान्त महासागर में स्थित मेरिआना ट्रेंच। इसकी गहराई माउंट एवरेस्ट की ऊँचाई से कहीं अधिक है।

उत्तरी हिन्द महासागर के जल में डूबी पंखे जैसी दो बड़ी भू-आकृतियाँ हैं जिन्हें ''अंत:समुद्री'' (सबमेरीन) फैन कहा जाता है। ये हैं ''बंगाल फैन'' व ''सिंधु फैन'' (चित्र-१०)। वास्तव में ये अवसादों से भरी बड़ी समुद्री बेसिनें हैं। ये अवसाद मुख्यत: नदियों - गंगा, ब्रह्मपुत्र, सिंधु और उनकी सहायक नदियों द्वारा थल को काटकर लाए गए पदार्थों से बने हैं। बंगाल की खाडी में स्थित बंगाल फैन विश्व का सबसे बड़ा गहरा समुद्री फैन है। उसकी लम्बाई लगभग ३००० किलोमीटर, अधिकतम चौड़ाई १४३० किलोमीटर और कुल क्षेत्रफल लगभग ३०,००,००० वर्ग किलोमीटर है। जहाँ तक अवसादों की मोटाई का प्रश्न है वह अधिकतम २० किलोमीटर है। ये अवसाद मुख्यत: गंगा और

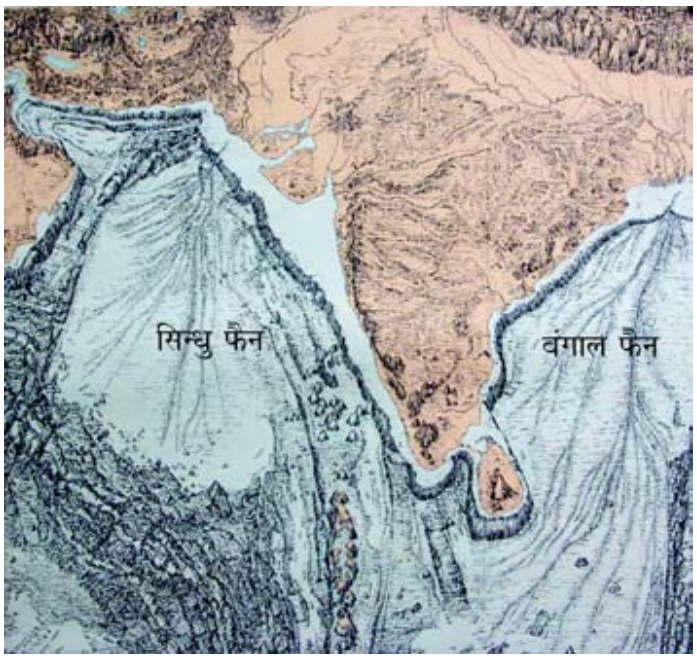

चित्र-१० : बंगाल फैन और सिंधु फैन

ब्रह्मपुत्र तथा उनकी सहायक नदियों ने हिमालय को काटकर बंगाल की खाड़ी में जमा किए। इन अवसादों के जमा होने की दर ३५ सेन्टीमीटर प्रति १००० वर्ष है। यह दर उथले शेल्फों में अवसाद के जमा होने की दर (२०-३० सेन्टीमीटर प्रति १००० वर्ष) जैसी ही है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि बंगाल फैन के अवसादों के परीक्षण से हिमालय के उत्थान के इतिहास की विभिन्न प्रावस्थाओं के बारे में जानकारी प्राप्त हो सकती है।

सिंधु फैन की लम्बाई १५०० किलोमीटर तथा अधिकतम चौड़ाई ९६० किलोमीटर और अधिकतम मोटाई १० किलोमीटर से अधिक है। उसका क्षेत्रफल लगभग ११,००,००० वर्ग किलोमीटर है। उसके अवसादों का निर्माण न केवल हिमालय को काटकर लाए गए मलबे से वरन् पाकिस्तान और अरब देशों के सूखे क्षेत्रों से बहाकर लाए गए मृदाओं से भी, हुआ है।

समुद्र स्तर में दीर्घकालीन परिवर्तन

विभिन्न भूवैज्ञानिक कालों में प्लेट विवर्तनिकी, ज्वालामुखी सक्रियता और जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप, समुद्र स्तर (सी लेवल) अनेक बार घटता-बढ़ता रहा है। वह वर्तमान तल से कई बार ऊँचा उठ जाता था और नीचे चला जाता था (चित्र-११)। अब से लगभग ९ करोड़ वर्ष पूर्व समुद्र का स्तर वर्तमान स्तर की तुलना में लगभग ३०० से ४०० मीटर ऊँचा था। पिछले १८,००० वर्षों के दौरान मुख्यत: ध्रुवीय प्रदेशों के हिमनदों और बर्फ छत्रकों के पिघलने के फलस्वरूप समुद्री स्तर लगभग १२० मीटर ऊँचा उठ गया है। वर्तमान में भूमण्डलीय समुद्र स्तर के ऊपर उठने की औसत दर १-२ मिलीमीटर प्रतिवर्ष है। ऐसा विश्व की जलवायु के निरंतर गरमाते जाने से, हिमनदों और बर्फ छत्रकों के पिघलते रहने के फलस्वरूप, और अंशत: औसत ताप के उत्थान से सतह के निकट के पानी के फैलने के कारण हुआ है।

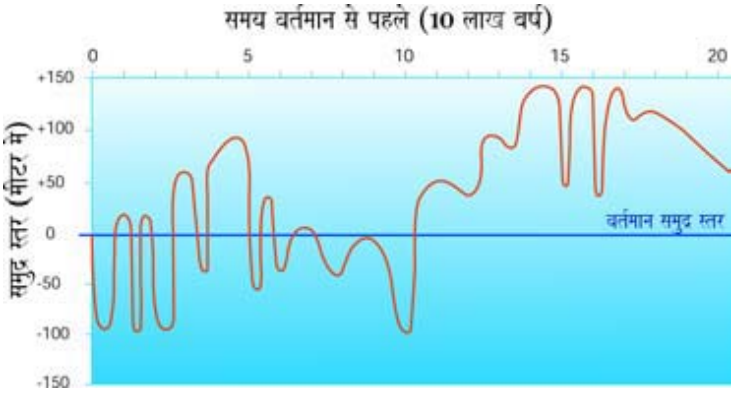

चित्र-११ : पिछले २ करोड़ वर्षों के दौरान समुद्र स्तर मे परिवर्तनकी घट

समुद्र स्तर के निम्नतम होने की घटना अब से लगभग १९,००० से १५,००० वर्ष पूर्व घटी थी। जब वह वर्तमान स्तर की तुलना में लगभग १२० मीटर नीचे चला गया था। उस दौरान नदियां अपने साथ बहाकर लाया हुआ अवसाद सीधा शेल्फों के किनारे पर जमा कर

देती थीं। इसके परिणामस्वरूप नदियों द्वारा अथवा अवसादो से भरे बहनेवाले पानी से बाहरी महाद्वीपीय शेल्फों या ढलानों पर अधिक गहरी खाइयाँ बनी जिसे ''अंत: समुद्री खड्ड'' (सबमैरिन कैनयन) नाम से पहचाना जाता है। बंगाल की खाड़ी में ऐसे १६ बड़े अंत:समुद्री खड्डे हैं।

समुद्री पानी

भूमण्डलीय महासागर ऐसे पानी से भरा हुआ है जिसका औसत घनत्व १.०३ ग्राम प्रति घन सेन्टीमीटर है परंतु यह घनत्व एकसमान नहीं होता। हल्का पानी हमेशा भारी पानी के ऊपर स्थित होता है। वैसे समुद्रीपानी का घनत्व, उसके ताप पर, उसमें घुले लवणों की मात्रा (इसे लवणता भी कहते है) पर तथा विशिष्ट जगह पर होनेवाले पानी पर पड़ने वाले दाब पर भी निर्भर होता है। महासागरों में भरे पानी में से ७५ प्रतिशत का ताप ०° और ६° के बीच, औसत ताप ३.५° होता है। गहराई का, और ध्रुवों के निकट का पानी ठंडा होता है परंतु ऊपरी हिस्सों में और भूमध्यरेखा की ओर ताप बढ़ता जाता है (चित्र-१२)। बंगाल की खाड़ी के पानी का ताप आमतौर से २२ से ३१° के बीच रहता है जबकि अरब सागर का पानी उससे १-२° ठंडा रहता है। परन्तु इतना कम अन्तर भी इनके ऊपर स्थित वायुमंडल पर बहुत प्रभाव करता है।

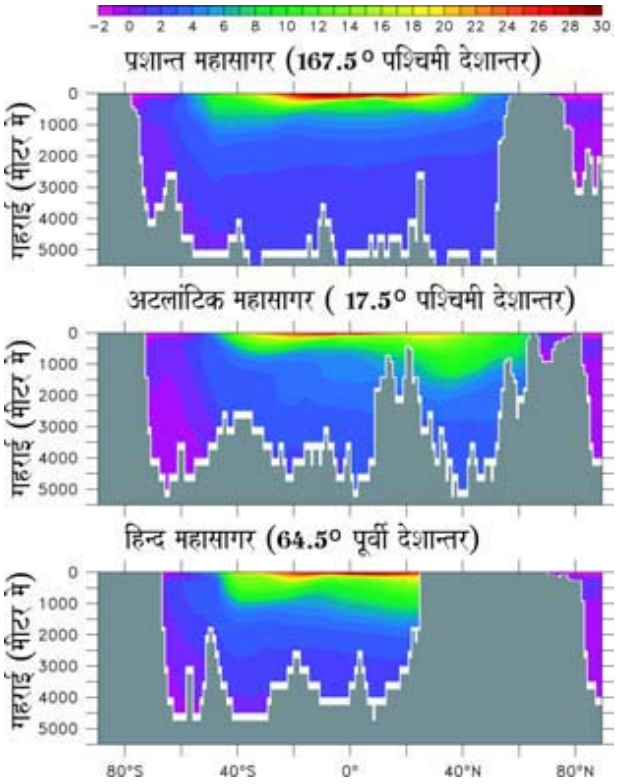

चित्र-१२ : प्रशांत, अटलांटिक और हिंद महासागरों की उत्तर-दक्षिण ऊर्ध्वाधर काटों में ताप (° सै.)

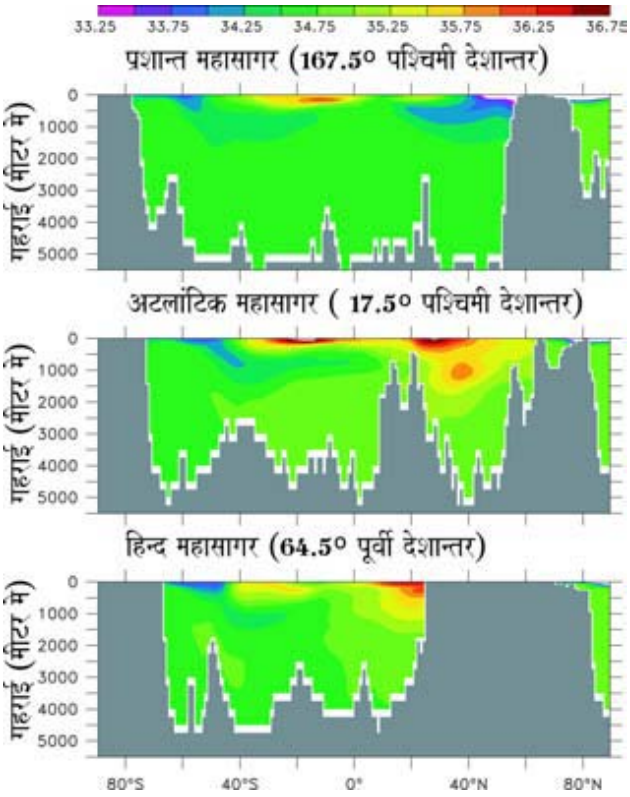

चित्र-१३ : प्रशांत, अटलांटिक और हिंद महासागरों की उत्तर-दक्षिण ऊर्ध्वाधर लवणता (काटों में) (प्रति एक हजार भाग)

लवणता पानी में घुले लवणों के भार और कुल पानी के भार के बीच के अनुपात से गिनी जाती है और उसे आमतौर से प्रति एक हजार भाग (ppt) के रूप में व्यक्त की जाती है। ७५ प्रतिशत समुद्र पानी की लवणता ३४-३५ प्रति एक हजार भाग है (चित्र-१३)। वैसे सागरों की औसत लवणता ३४.७ प्रति एक हजार भाग है अर्थात् प्रति एक किलोग्राम पानी में औसतन ३४.५ ग्राम लवण होते हैं (देखिए पृष्ठ २३)।

उत्तरी बंगाल की खाड़ी के सतह के निकट के पानी की न्यूनतम लवणता ३१ प्रति एक हजार भाग हो सकती है (चित्र-१४)। बंगाल की खाड़ी में होने वाली वर्षा तथा बहुत बड़ी मात्रा में नदियों (गंगा, ब्रह्मपुत्र, इरावदी, गोदावरी, कृष्णा तथा अन्य) द्वारा आने वाले मीठे पानी का स्त्रोत इतनी कम लवणता का कारण है। मीठे पानी के मात्रा का स्रोत इतना अधिक है कि यदि खाड़ी में एक वर्ष में प्राप्त होने वाले पानी को संचित कर लिया जाए और उसे खाड़ी की संपूर्ण सतह पर फैला दिया जाए तब उसकी परत की मोटाई एक मीटर से भी अधिक हो जाएगी। अरब सागर की सतह के निकट के पानी की लवणता बंगाल की खाड़ी की तुलना में काफी अधिक है क्योंकि वहां अपेक्षाकृत अधिक वाष्पन होता है और उसे नदियों से कम मात्रा में साधारण पानी प्राप्त होता है।

हम एक वायुमंडल दाब के नीचे रहते है। तथापि सागर में प्रत्येक १० मीटर गहराई पर दाब एक वायुमंडल की दर से बढ़ जाता है। इसका यह अर्थ हुआ कि उस सागर की तलहटी पर, जिसकी औसत गहराई ३७०० मीटर है, ३७० वायुमंडलों के तुल्य दाब रहता है। दाब का प्रभाव सागर के भौतिक, रासायनिक और जैव (खोलों के विघटन) गुणों पर पड़ता है।

चंचल महासागर

सागर का पानी हमेशा गतिशील रहता है। इस गति के तीन मुख्य कारण है : ध्रुवीय प्रदेशों के निकट पानी के ठंडे होने और भूमध्यरेखा के निकट गर्म होने, सागर सतह पर से बहने वाली पवनों द्वारा बल डालने तथा चंद्रमा और सूर्य के गुरुत्वाकर्षण बल के प्रभावस्वरूप उठने वाले ज्वार, समुद्री पानी की गति पर पृथ्वी के घूर्णन (पृथ्वी अपनी धुरी पर, जो उसके ध्रुवो में से गुजरती है, २४ घंटों में ३६०° पश्चिम से पूर्व की ओर घूम जाती है) का प्रभाव भी पड़ता हैं।

समुद्री पानी ध्रुवों के निकट ठंडा हो जाता है (चित्र-१२)। इससे उसका घनत्व बढ़ता है और वह गहराई की ओर चला जाता है। इससे विश्वव्यापी पैमाने पर एक अत्यंत बृहत परिसंचरण चक्र आरंभ हो जाता है। जिसे ''कन्वेयर बेल्ट अथवा ''थर्मोहेलाइन परिसंचरण'' कहते है (चित्र-१५)। पानी उत्तरी अटलांटिक महासागर में गहराई की ओर

चला जाता है और प्रशांत तथा हिन्द महासागरों में सतह पर उभर आ जाता है परंतु उसकी गति बहुत धीमी - एक सेन्टीमीटर प्रति सैकंड का एक अंश मात्र ही होती है। इसलिए इसका चक्र पूरे होने में कई शताब्दियाँ लग जाती हैं। जबकि उसका सीधा अवलोकन तो नहीं किया जा सकता परन्तु पानी का ताप, लवणता तथा अन्य गुणों के वितरण के आधार पर इसके परिसंचरण का निष्कर्ष निकाला जाता है।

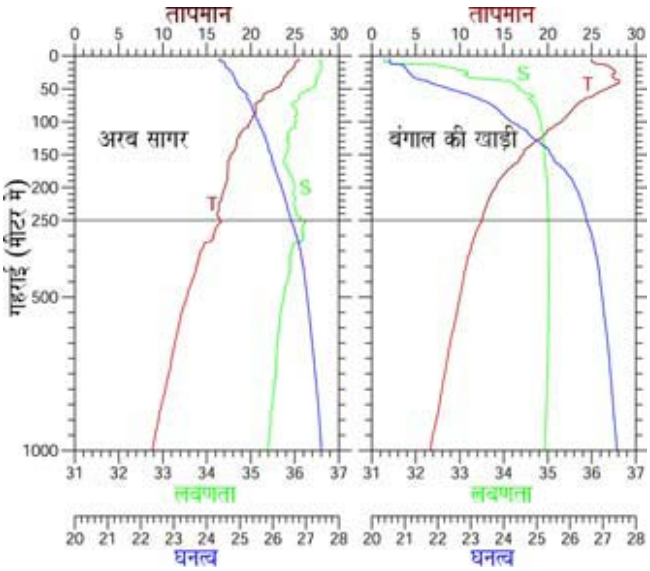

चित्र-१४ : उत्तरी अरब सागर और बंगाल की खाड़ी के ताप, लवणता और घनत्व की ऊर्ध्वाधर प्रोफाइलें। बंगाल की खाड़ी के सतह के जल की निम्न लवणता के कारण सतह के निकट तीव्र घनत्व प्रवणता उत्पन्न हो जाती है (जल का उच्च स्तरीकरण हो जाता है)। समुद्री पानी के घनत्व की कम विचरणशीलता के कारण घनत्व को (g/Cm^3-1)x1000 में दर्शाया गया है।

पानी के हलचल से सतह से एक किलोमीटर गहराई तक पवनों का प्रभाव होता है परन्तु सर्वाधिक हलचल केवल सबसे ऊपरी, कुछ सौ मीटर परत पर दिखाई देती है। इन जलधाराओं (करंटस्) की प्रकृति पवनों की प्रकृति द्वारा निर्धारित होती है। पवनों के फलस्वरूप सागर के सतह के पानी के गतिशील होने का सर्वाधिक आश्चर्यजनक पहलू है उसकी उपोष्ण (सबट्रॉपिकल) क्षेत्रों में वृत्ताकार गति (जायर)। इसमें महासागरों की पश्चिमी सीमा (महाद्वीपों के पूर्वी तट) से ध्रुवों की ओर बहने वाली प्रबल जलधारा को संतुलित करने के लिए बेसिन के बाकी हिस्से से भूमध्यरेखा की ओर एक जलधारा धीमी गतिसे बहती है (चित्र-१६)। अटलांटिक और प्रशांत महासागरों में पश्चिमी सीमाकी प्रबल धाराएं क्रमश: गल्फ स्ट्रीम और क्यूरोसिवो नाम से जानी जाती है। वैसे महासागरों की सबसे प्रबल धारा है अंटार्कटिक परिध्रुवीय (सरकमपोलर) धारा, जो दक्षिणी (अंटार्कटिक)

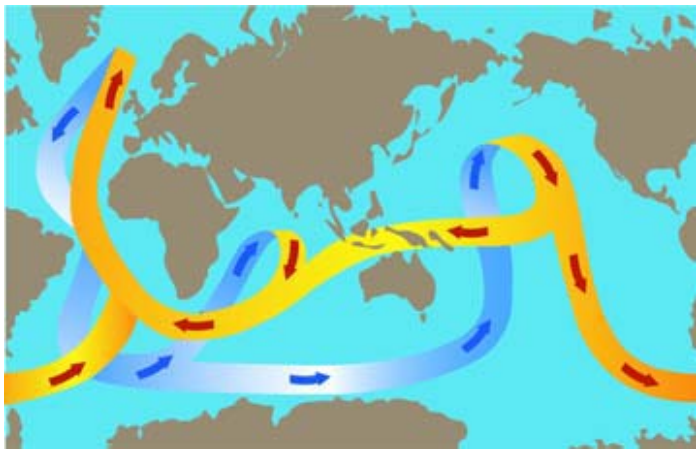

चित्र-१५ : विश्व सागर कन्वेयर बेल्ट (तीर के लाल निशान उष्ण और नीले निशान ठंडा पानी दर्शाते हैं)

महासागर में पूरी पृथ्वी की प्रदक्षिणा करती है।

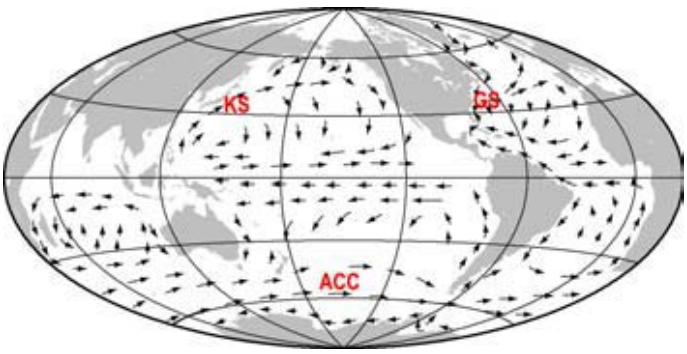

चित्र-१६ : पवनों द्वारा उत्पन्न सागर की सतह के पानी के परिसंचरण का व्यवस्था चित्र : प्रशांत, अटलांटिक और दक्षिणी हिन्द महासागर की पश्चिमी सीमाओं के निकट से प्रमुख जलधाराएं ध्रुवों की ओर बहती है : (KS = क्यूरोसिवो धारा, GS = गल्फस्ट्रीम धारा, ACC = अंटार्कटिक परिध्रुवीय धारा)

उत्तरी हिन्द महासागर में जल का परिसंचरण बहुत विलक्षण तरीके से होता है क्येंकि उसको मानसून नामक प्रबल मौसमी पवनों का सामना करना पड़ता है (चित्र-१७) इस कारण उत्तरी हिन्द महासागर का परिसंचरण प्रशांत एवं अटलांटिक महासागरों में होने वाले परिसंचरण के जैसा न होते हुए हर मौसम में बदलता है (चित्र-१८)। हाल के शोध कार्यों से पता चला है कि अरब सागर, बंगाल की खाड़ी और भूमध्यरैखिक हिन्द महासागर एक गतिशील इकाई की भांति कार्य करते हैं और उनके किसी भी भाग की जलधाराएं न केवल स्थानीय पवनों द्वारा वरन् बेसिन के अन्य भागों की पवनों द्वारा भी प्रभावित होती है। उदाहरणार्थ भारत के पूर्वी तट के साथ बहने वाली जलधाराएं न केवल ग्रीष्म मानसून के दौरान ही प्रबलतम होतीं वरन् मार्च - अप्रैल के दौरान भी, जब पवन दुर्बल होती हैं, प्रबलतम हो जाती हैं।

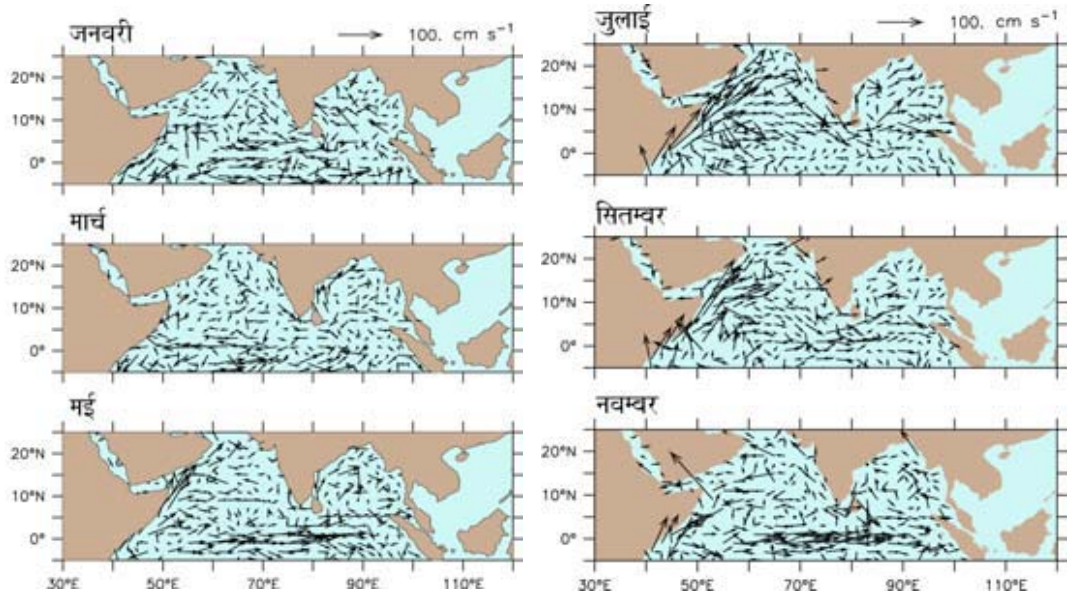

चित्र-१७ : उत्तरी हिंद महासागर के ऊपर से बहने वाली पवनें जिनकी दिशा मौसम के अनुसार उलट जाती है (गति मीटर प्रति सैकंड में)

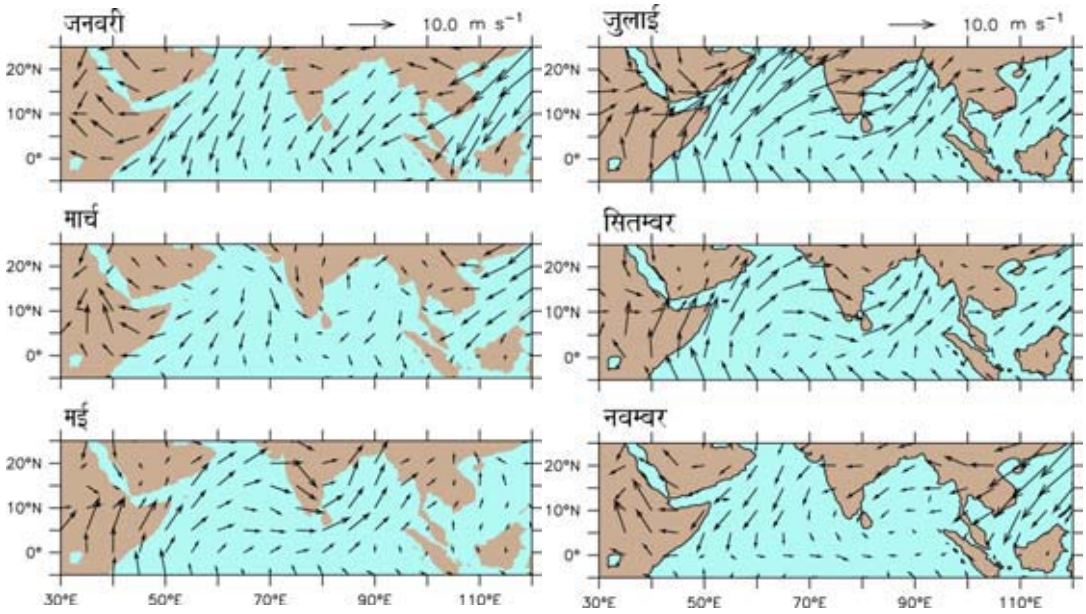

चित्र १८ : उत्तरी हिंद महासागर में मौसम के अनुसार दिशा बदलने वाली जल धाराएं (गति सेंटीमीटर प्रति सैकंड में)

ज्वारों के फलस्वरूप होने वाली सागर के पानी की हलचल मुख्य रूप से सामायिक होती है और उसमें पानी की सतह ऊपर उठती और नीचे गिरती है। सतह की इस ऊपर - नीचे की गति के साथ क्षैतिज (हॉरिजॉंटल) रूप से जो धाराएं उत्पन्न होती हैं वे भी सामायिक

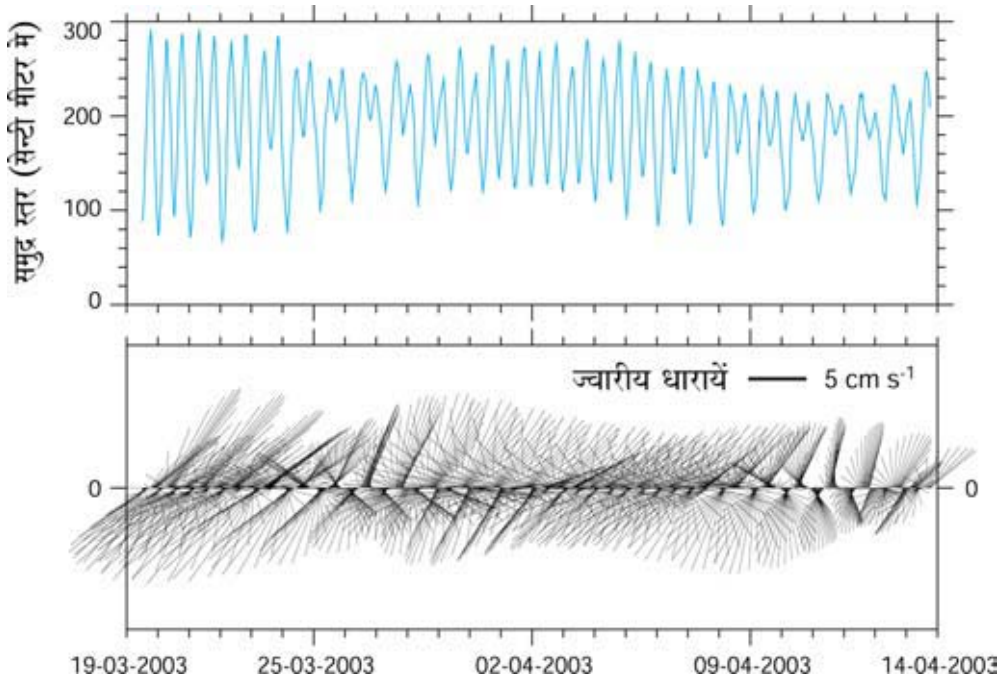

चित्र-१९ : मारमुगवा बंदरगाह पर टाइड गेज द्वार मापा गया समुद्र स्तर (सेमी.) और मारमुगवा के निकट सागर में ज्वारीय धारा की गति (सेमी/सैकंड)। वारों से संबंद्ध लयबद्ध परिवर्तनों और दिन में ज्वारीय धारा की दिशा और वेग होन वाले में परिवर्तनों पर ध्यान दीजिए।

होती हैं (चित्र-१९)। ज्वारीय गति उथले तटीय क्षेत्रों में सर्वाधिक स्पष्ट होती है। गहरे सागर में पवनजन्य परिसंचरण की तुलना में उसका महत्व काफी कम हो जाता है।

महासागर और जलवायु

पृथ्वी की सतह के हर क्षेत्र को सूर्य की उष्मा बराबर मात्रा में नहीं मिलती। सागर की हलचल सौर ऊष्मा के स्थानांतरण में महत्वपूर्ण योग देती है तथा ध्रुवीय प्रदेशों और भूमध्यरेखा के मध्य के उष्मा के अन्तर को कम कर देती है। महासागर भूमध्यरेखा से उच्च अक्षांशों को उष्मा की औसतन उतनी ही मात्रा को स्थानांतरित करता है जितनी वायुमंडल करता है। वायु की तुलना में पानी की ऊष्मा धारिता के बहुत अधिक होने के फलस्वरूप ही जलधाराओं के लिए, जो पवनों के मुकाबले बहुत दुर्बल होती हैं, वायुमंडल के बराबर ऊष्मा स्थानांतरण करना सम्भव हो पाता है। इसलिए समुद्री परिसंचरण का जलवायु से घनिष्ठ संबंध होता है और वह उसे स्थानगत और कालगत, दोनों पैमानों पर, प्रभावित करता है। दीर्घकालीन समय पैमाने पर सागर भूमंडलीय संवाहक पट्टी (कन्वेयर बेल्ट) के माध्यम से जलवायु के निर्धारण में योग देता है (चित्र-१५)। जलवायु, वायुमंडल और महासागर में होने वाले परिवर्तनों से तथा सूर्य के इर्दगिर्द पृथ्वी की परिक्रमा कक्षा में विचरणों के फलस्वरूप सौर ऊष्मा में होने वाले परिवर्तनों से प्रभावित होती है।

जलवायु पर महासागरों के प्रभाव का आसानी से प्रेक्षित होने वाला एक उदाहरण है ''एल-नीनो'' यह एक ऐसी परिघटना जो भूमध्यरैखिक प्रशांत महासागर में घटती है। सामान्य परिस्थितियों में पूर्वी (पूर्व दिशा से आने वाली) व्यापारी पवनें पश्चिमी प्रशांत महासागर में इंडोनेशिया और पपुआ, न्यू गिनी, के निकट गर्म जल का भंडार बनाए रखती है (चित्र-२०)। यह गर्म जल भंडार प्रबल वायुमंडलीय संवहन को बनाए रखने में मदद देता है। इसके परिणामस्वरूप इंडोनेशिया का निकटवर्ती क्षेत्र संसार के सबसे अधिक वर्षा प्राप्त करने वाले क्षेत्रों में से एक बन गया है। ग्रीष्म मानसून के दौरान उच्च वर्षा वाला यह क्षेत्र हिन्द महासागर पर और भारतीय उपमहाद्वीप के ऊपर तक फैल जाता है (चित्र-२१)।

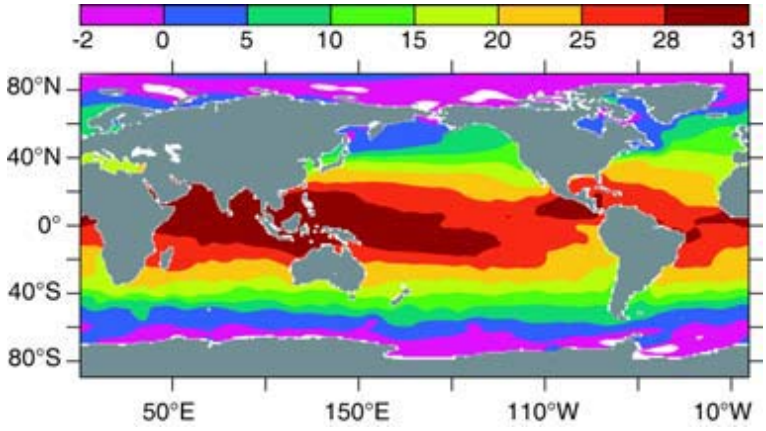

चित्र-२० : मई माह के दौरान सागर सतह का ताप (° सै.)। उस ''उष्ण जलाशय'' पर ध्यान दीजिए। जो उस समय पश्चिमी प्रशांत महासागर और उत्तरी हिंद महासागर पर फैल जाता है।

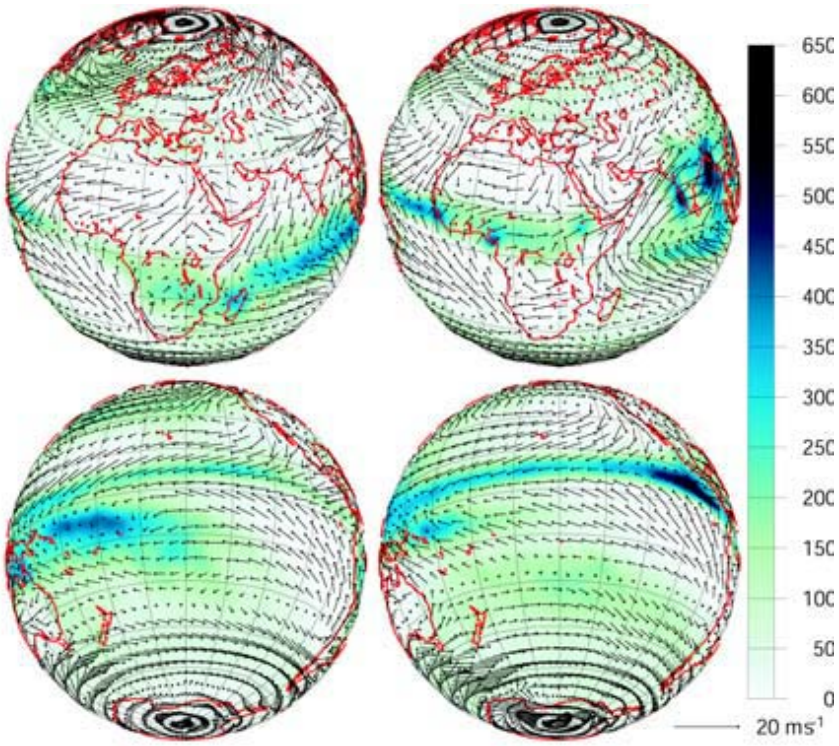

चित्र-२१ : जनवरी (बांयी ओर) और जुलाई (दाहिनी ओर) वर्षा (रंग पट्टी, मि.मि./मास) और पवन (वेग और दिशा, मी./सै.)। जनवरी के महीने में हिंद महासागर में भारी वर्षा की पट्टी भूमध्यरेखा के निकट स्थित रहती है परंतु जुलाई माह में वह उत्तर की ओर भारतीय उपमहाद्वीप के ऊपर सरक जाती है। पश्चिमी प्रशांत महासागर और पूर्वी हिंद महासागर अपने क्रमश: पूर्वी और पश्चिमी भागों से अधिक वर्षा प्राप्त करते हैं।

ऊपर उठती हुई वह वायु जो इस वर्षा के लिए उत्तरदायी होती है, प्रशांत महासागर के पार चली जाती है और उसके पूर्वी भाग में, पेरू के तट के निकट, नीचे उतर आती है। जब ''एल नीनो'' की घटना घटती है तब पेरू के निकट का समुद्री पानी गर्म हो जाता है और यह गर्म जल पश्चिम की ओर फैलने लगता है। इससे प्रशांत महासागर के पूर्वी और मध्य भागों के सतह के जलों का ताप बढ़ जाता है। इससे इंडोनेशिया और पश्चिमी प्रशांत महासागर के ऊपर कार्यरत संवहन चक्र समाप्त हो जाता है।

''एल नीनो'' के प्रभाव भूमध्यरैखिक प्रशांत महासागर तक ही सीमित नहीं रहते। जलवायु पर उसके प्रभाव विश्वव्यापी स्तर पर भी महसूस किए जाते हैं और इस प्रक्रिया में प्रशांत महासागर, जो पृथ्वी के लगभग आधे भाग को घेरे हुए है, मदद देता है। ''एल नीनो'' के दौरान पश्चिमी प्रशांत महासागर के ऊपर वायुमंडलीय संवहन चक्र के समाप्त हो जाने पर अधिक वर्षा वाली पट्टी पूर्व की ओर सरक जाती हैं, जिसके फलस्वरूप भारत पर होने वाली वर्षा में भी कमी हो जाने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है।

उपग्रह प्रौद्यागिकी में हुई असाधारण प्रगति के फलस्वरूप हाल ही में भूमध्यरैखिक हिंद महासागर में भी ''एल नीनो'' सदृश्य एक दोलन का पता चला है। उसे ''हिंद महासागर द्विध्रुव प्रणाली'' (इंडियन ओशन डाइपोल मोड) के नाम से पहचाना जाता है। सामान्य परिस्थितियों में पश्चिमी प्रशांत महासागर की गर्म जल पट्टी उत्तरी हिन्द महासागर के पार फैल जाती है (चित्र-२०)। आमतौर पर पूर्वी भूमध्यरैखिक हिन्द महासागर अपने पश्चिमी भाग की तुलना में अधिक गर्म रहता है (चित्र-२२)। जब उक्त द्विध्रुव प्रणाली की सकारात्मक अवस्था आती है, जैसा १९९७ में हुआ था, तब पूर्वी भाग में सागर सतह का ताप घट जाता है परन्तु पश्चिमी भाग का बढ़ जाता है। हाल के अनुसंधानों से पता चला है कि इस द्विध्रुव प्रणाली का भारत पर होने वाली वर्षा पर भी उल्लेखनीय प्रभाव पड़ता है।

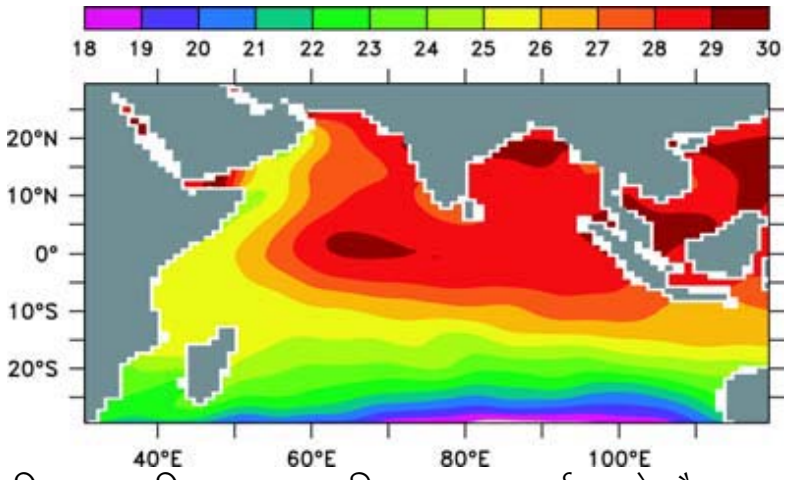

चित्र-२२ : हिन्द महासागर की सतह का जुलाई माह के दौरान ताप (° सै.)। ध्यान दीजिए कि मानसून के दौरान अरब सागर ठंडा हो जाता है परंतु बंगाल की खाड़ी उष्ण ही रहती है।

अरब सागर और बंगाल की खाड़ी भी जलवायु को अत्यधिक प्रभावित करते हैं। यद्यपि दोनों एक ही अक्षांशीय पट्टी में स्थित हैं और दोनों को समान मात्रा में सौर ऊर्जा प्राप्त होती है परंतु बंगाल की खाड़ी अरब सागर की तुलना में अधिक गर्म है और उसमें कहीं अधिक तूफान उत्पन्न होते हैं। बंगाल की खाड़ी पर उत्पन्न होने वाले अवदाब (डिप्रैशन) उत्तर - पश्चिम की ओर बढ़ कर गंगा के कछार पार कर लेते हैं और उत्तरी भारत में वर्षा करते हैं (चित्र-२३)। अरब सागर पर औसत वर्षा काफी कम होती है। इसका मुख्य कारण महासागर ही है। हाल के अनुसंधानों से, कुछ समय पूर्व ही, इसके दो कारण ज्ञात हुए हैं। पहला : अरब सागर के ऊपर बहने वाली पवनें, पूर्वी अफ्रीका के पर्वतों की उपस्थिति के कारण अपेक्षाकृत प्रबल होती हैं। ये प्रबल पवनें सागर में कहीं भी अधिक शक्तिशाली परिसंचरण उत्पन्न करने में योग देती हैं और सागर सतह पर प्राप्त होने वाली ऊष्मा को दक्षिण की ओर तथा सागर के गहरे भागों की ओर स्थानांतरित कर देती हैं। इसकी तुलना में बंगाल की खाड़ी के ऊपर बहने वाली पवनें मंद होती हैं जिससे खाड़ी की सतह पर प्राप्त होने वाली ऊष्मा वहां से स्थानांतरित नहीं होती। दूसरा : बंगाल की खाड़ी पर न केवल अपेक्षाकृत अधिक वर्षा होती

है वरन् वह गंगा, बह्मपुत्र तथा अन्य नदियों से भी अधिक मात्रा में साधारण पानी प्राप्त करती है। इससे खाड़ी की सतह का पानी बदलता रहता है और जल स्तंभ स्थिर हो जाता है। इससे पवनों के लिए सतह के गर्म जल की परत के लिए नीचे के ठंडे पानी से मिलना कठिन हो जाता है (चित्र-१४)। अरब सागर में ऐसा कोई स्थायीकारी प्रभाव कार्यरत नहीं होता। परिणामस्वरूप सतह का गर्म पानी नीचे के ठंडे पानी से अधिक तेजी से मिलता है।

वायुमंडल में संवहन चक्र के आरंभ होने के लिए सागर सतह के ताप का २८° सै. होना आवश्यक होता है और यह स्थिति अरब सागर के अधिकांश भाग की तुलना में बंगाल की खाड़ में बेहतर तरीके से उत्पन्न हो जाती है (चित्र-२२)। अतएव जहां तक जलवायु का प्रश्न है उत्तरी हिन्द महासागर के ये दोनों अंग भौगोलिक समानताओं के बावजूद भी एक-दूसरे से बहुत भिन्न हैं।

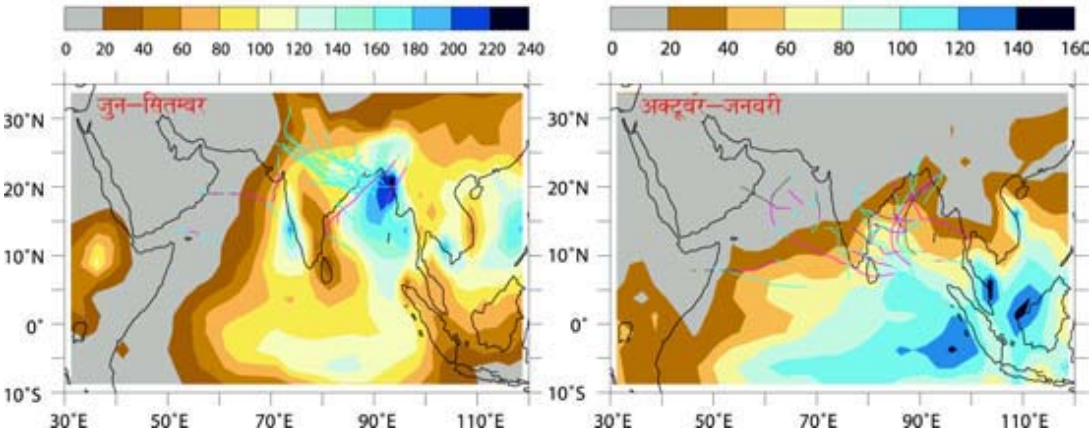

चित्र-२३ : जून-सितंबर और अक्तूबर-जनवरी के दौरान संचयी वर्षा (रंग, पट्टी, सेमी.) और तूफान पथ। चित्र में १९९०-१९९७ के आंकड़ों का उपयोग किया गया है। हल्का नीला (सायन) रंग अवदाबों के पथ, लाल रंग चक्रवातों के पथ, और काला रंग तीव्र चक्रवातों के पथ दर्शाता है। उत्तरी बंगाल की खाड़ी पर जून-सितंबर के दौरान बड़ी संख्या में अवदाब बनते हैं परंतु उस समय चक्रवात कम आते हैं। ये अवदाब उत्तरपश्चिम दिशा में बढ़ते हुए गंगा के मैदान में पहुँच जाते हैं और उत्तरी भारत के अधिकांश भागों पर वर्षा करते हैं। अक्तूबर-जनवरी में अवदाबों की संख्या कम होती है परंतु चक्रवातों की संख्या अधिक।

बंगाल की खाड़ी के तूफान

बंगाल की खाड़ी उष्णकटिबंधीय तूफानों को उत्पन्न करने वाले विश्व के प्रमुख केन्द्रों में से एक हैं। हिन्द महासागर और दक्षिणपश्चिमी प्रशांत महासागर पर ये चक्रवात ''साइक्लोन'', उत्तरपश्चिमी प्रशांत महासागर पर ''टाइफून'' और अटलांटिक महासागर पर ''हरी कैन'' कहलाते हैं। बंगाल की खाड़ी के ऊपर चक्रवात आमतौर से पश्चिम - उत्तरपश्चिम

अथवा उत्तर की ओर मुड़ जाते हैं और भारत का पूर्वी तट अथवा बंगला देश पार कर जाते हैं (चित्र-२३)। जब ऐसा हो जाता है तब तटीय क्षेत्रों में बहुत तेज पवनें बहने लगती हैं और भारी वर्षा होने लगती है। इससे मनुष्य और वित्त की बहुत हानि होती है।

चक्रवात के साथ अक्सर ही आ जानेवाला ''तूफान महोर्मि'' (स्टार्म सर्ज) इस हानि में बहुत वृद्धि कर देता है। महोर्मि मुख्यत: तो तूफानी हवाओं द्वारा (सागर के) पानी को इकट्ठा करने की घटना होती है। इससे तटीय इलाके में सागर का सामान्य जल स्तर (मीन वाटर लेवल) ऊपर उठ जाता है और इसके ऊपर उठने की मात्रा पवनों की प्रबलता पर निर्भर होती है। अधिकांश चक्रवातों में सागर का जल स्तर एक मीटर और बड़े चक्रवातों में २-३ मीटर तक ऊँचा उठ जाना कोई असाधारण घटना नहीं होती। सागर के जल स्तर के ऊँचे उठने, और तेज बहती पवनों द्वारा ऊँची लहरें उठाने से तूफान महोर्मि से मनुष्य और वित्त की अत्यधिक हानि होती है। अक्तूबर १९९९ में आए एक प्रबल चक्रवात (इसे ''सुपर साइक्लोन'' भी कहा जाता है) ने उड़ीसा में १०,००० से अधिक लोगों की जान ले ली थी और सम्पत्ति को अत्यधिक हानि पहुँचाई थी। बंगाल की खाड़ी में आए हुए २६ तूफान विश्व की ३४ ऐसे तूफान महोर्मियों में से हैं जिनमें प्रत्येक तूफान के कारण ५००० अथवा अधिक लोगों के मरने की सूचना है। १९७० में बंगला देश में आए एक तूफानी महोर्मि में ५,००,००० लोगों की मृत्यु हो गई थी। बंगला देश की सपाट भूआकृति के कारण वहां तूफान महोर्मि विशेष रूप से अधिक हानि पहुंचाते हैं।

पवनजन्य लहरें

महासागर की चंचल प्रकृति का आसानीसे स्पष्ट करनेवाला उदाहरण है सदैव तरंगित होते रहने वाली उसकी सतह। सागर के ऐसे चंचल प्रकृतिका दर्शन उसे देखने वाले अथवा जल जहाज में यात्रा करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को होता है। सतह पर बहती हुई पवन के कारण सतत उठने वाली ये तरंगें ''पवनजन्य तरंगे'' (लहरें) कहलाती हैं। ये लहरें सतह गुरुत्व (ग्रैविटी) लहरों की सर्वाधिक प्रचलित रूप होती हैं। ये ''गुरुत्व लहरें'' इसलिए कहलाती हैं कि पवन द्वारा सागर सतह के जल कणों को क्षुब्ध कर देने और उनमें गतिज ऊर्जा (काइनेटिक एनर्जी) भरकर उनका संतुलन बिगाड़ देने पर पृथ्वी का गुरुत्व उन्हें फिर से संतुलन में लाने का प्रयत्न करता है। ये लहरें उस पानी में उत्पन्न होती हैं जिसकी गहराई लहरों की आधी तरंगदैर्ध्य (वेवलेंथ) से अधिक होती हैं। इसलिए इन्हें ''गहरे पानी की लहरें'' भी कहा जाता है। इन लहरों के कारण पानी को जो संवेग (मूमेंटस) प्राप्त होता है उसका गहराई के साथ ह्रास हो जाता है। इसलिए इनके कारण गहरे पानी में कोई हलचल उत्पन्न नही होती (चित्र-२४)। इन तरंगों से संबन्धित प्रतिरुप (पैटर्न) की चाल १-१००

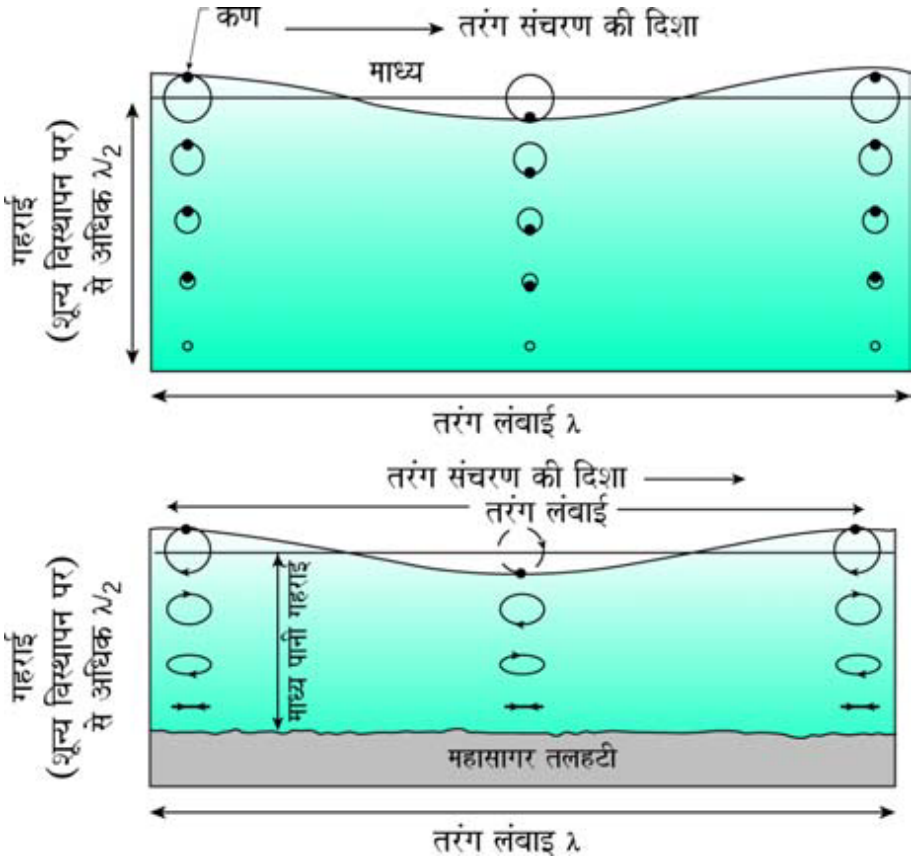

चित्र-२४ : गहरे पानी की लहरें (ऊपर) और उथले पानी की लहरें (नीचे) दर्शाने वाला व्यवस्थात्मक चित्र।

मीटर प्रति सेकेण्ड होती है तथा तरंगों की लम्बाई १-१००० मीटर एवं समयावधि कुछ सेकण्डों से कुछ मिनटों तक होता है।

एक प्रदत्त समय पर पवन और लहरों के बीच इतना घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो जाता है कि लहरों के अभिलक्षणों से पवन वेग के बारे में काफी विश्वसनीय निष्कर्ष निकाला जा सकता है। वैसे लहरों को मापने के लिए बोफोर्ट नामक पैमाना, विकसित किया जा चुका है।

गहरे सागर में उत्पन्न लहरें (महातरंग - स्वेल - के रूप में) सागर के पार हजारों किलोमीटर तक चल कर किनारे जा पहुँचती हैं। खुले सागर का वह भाग जहां ये लहरें उत्पन्न होती है तरंग परास (फेच) कहलाता है। पवनजन्य लहरों का आकार पवन की गति, उसके बहने की समयावधि और तरंग परास पर निर्भर होता है।

ज्वार भाटा

ज्वार भाटा चंचल सागर का एक और ऐसा पहलू है जिसे पुलिन (बीच) पर खड़ा एक उत्साही प्रेक्षक स्पष्ट रूप से देखलेता है। चंद्रमा और सूर्य के गुरुत्वाकर्षण बलों के फलस्वरूप

उत्पन्न एक निश्चित समयावधि के बाद वे आते रहते हैं और उनके बारे में आसानी से पूर्वानुमान लगाया जा सकता है (चित्र-१९)। इसीलिए हर बड़े बंदरगाह के लिए पूरे वर्ष की अग्रिम वार-सारणियां तैयार की जाती हैं। ज्वार को विशेष प्रकार की सतह गुरुत्व लहरें भी कहा जाता है क्योंकि ये लहरें उस पानी में उठती हैं जिसकी गहराई उनकी तरंगदैर्ध्य के आधे से कम होती है। उथले पानी की लहरों की गति तरंगदैर्ध्य सूत्र $\sqrt{(gH)}$ द्वारा व्यक्त की जाती है जहाँ "g" पृथ्वी का गुरुत्वीय त्वरण (ग्रैवीटेशनल एक्सीलरेशन) और "H" सागर की गहराई दर्शाता है। खुले सागर में, जिसकी गहराई लगभग ३७०० मीटर है, ये लहरें ७०० किलोमीटर प्रति घंटे की गति से चलती हैं जो एक आम जैट हवाई जहाज की गति होती है। इन लहरों के संवेग का गहराई के साथ ह्रास नहीं होता और ये सागर की तलहटी में भी गतिशील रहती हैं (चित्र-२४)।

ज्वारों के तरंगदैर्ध्य का परास १०० से १०,००० किलोमीटर तक और उनकी समयावधि १२.५ (अर्द्ध-दैनिक वार की) और २४ घंटे (दैनिक ज्वार की) होती है। भारतीय तटों के साथ आने वाले ज्वार अर्द्ध-दैनिक और दैनिक, दोनों किस्मों के होते हैं। भारतीय तटों के दक्षिणी भाग में ज्वार और ज्वारीय धाराएं (टाइडल करंट) अपेक्षाकृत धीमे होते हैं। धाराओं की गति लगभग १० सेन्टीमीटर प्रति सेकेण्ड जैसी कम होती है। इन धाराओं के परिमाण (मैग्नीट्यूड) उत्तर की ओर बढ़ते जाते हैं और कुछ क्षेत्रों, यथा कच्छ की खाड़ी और खम्भात की खाड़ी, में वे बहुत उच्च हो जाते हैं। वहाँ उनकी गति २ मीटर प्रति सैकंड से अधिक हो सकती है।

सुनामी

''सुनामी'' जपानी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है ''बंदरगाह की लहर''। सुनामी उथले सागर की लहरें हैं। इसलिए ज्वारों की भांति खुले महासागर में वे बहुत तेज गति से चलती हैं परंतु उनके तरंगदैर्ध्य क्षुद्र (१०-१००० किलोमीटर परास में) और समयावधि (१००-३००० सैकेण्ड) होती है। खुले महासागर में सुनामियों के कारण सागर की ऊपरी सतह में होने वाले विक्षोभ क्षुद्र (आमतौर से आधा मीटर से भी कम) और कणों की (लहरों की नहीं) गति कुछ सेन्टीमीटर प्रति सैकेण्ड होती है। इसलिए सागर पर यात्रा कर रहे जहाजों के लिए वे महत्वपूर्ण नहीं होतीं और आमतौर पर सागर पर यात्रा कर रहे जहाज उन पर ध्यान नहीं देते परंतु जब सुनामी तट के निकट आ जाती हैं तब उनमें दो बड़े परिवर्तन हो जाते हैं जिनके फलस्वरूप उनकी (हानिकारी) क्षमता बहुत अधिक बढ़ जाती है। पहला परिवर्तन सागर की गहराई कम होने से आता है। इससे सुनामियों में मौजूद ऊर्जा जो खुले सागर में अधिक गहराई में वितरित होती है। कम गहराई में सांद्रित हो जाती है। दूसरा

परिवर्तन सागर की गहराई के कम हो जाने से उनकी गति के घट जाने के रूप में होता है। इससे उनकी विशाल मात्रा को कम क्षैतिज दूरी में सीमित होने के लिए मजबूर कर देना। इससे लहरों की ऊँचाई और कणों का वेग बढ़ जाता है। कणों का वेग ७ मीटर प्रति सैकेण्ड (२५ किलोमीटर प्रति घंटा) से भी अधिक हो जाता है। परिणाम स्वरूप सुनामियों के कारण पानी का स्तर ऊपर उठने और नीचे गिरने लगता है। ऐसा, २-३ दिनों तक, उस समय तक होता रहता है जब तक सुनामियों के पैकेट में भरी ऊर्जा समाप्त नहीं हो जाती और सागर अपना संतुलन पुन: प्राप्त नहीं कर लेता।

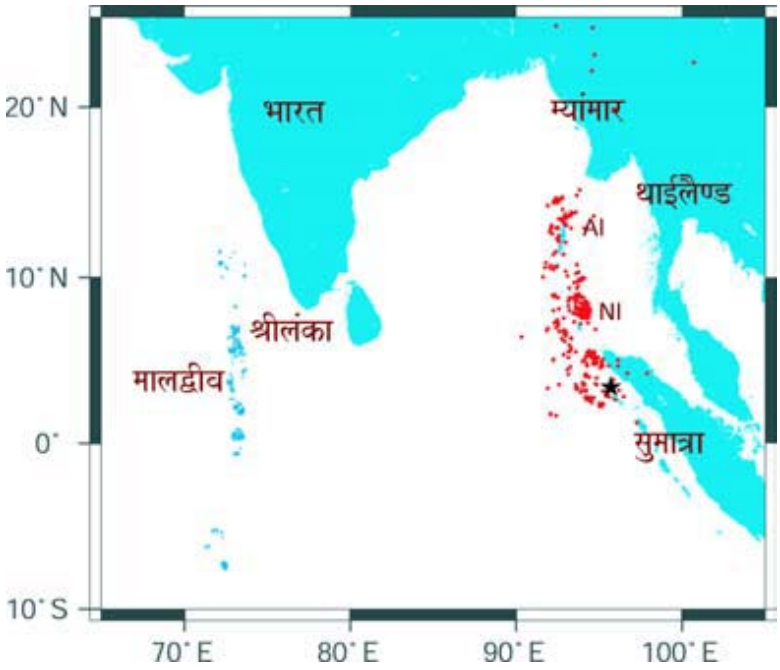

चित्र-२५ : काली तार का २६ दिसंबर २००४, को आए भूकम्प का अधिकेन्द्र दर्शाती है जबकि लाल धब्बे १० फरवरी २००५ तक आए पश्चझटकों के स्थल दर्शाते हैं। पश्चझटकें भूकम्प प्रभावित पूरे क्षेत्र में आते रहे थे। A1 = अंडमान द्वीप NI = निकोबार द्वीप समूह

सुनामी सागर की तलहटी के बड़ा पैमाने पर क्षोभित होने से उत्पन्न होती हैं। तीन घटनाएं ये क्षोभ उत्पन्न कर सकती हैं : (१) ऐसे भूकम्प जिनके अधिकेन्द्र (एपीसेन्टर) सागर की तलहटी के नीचे स्थित होते हैं। इन भूकम्पों से सागर की तली कम्पन करने लगती; (२) सागर की तलहटी पर होने वाले पंक स्खलन (मडस्लाइड); ये स्खलन, विशेष रूप से महाद्वीपीय ढलान पर होने वाले पंक स्खलन, एकाएक उसकी (ढलान की) आकृति बदल सकते हैं

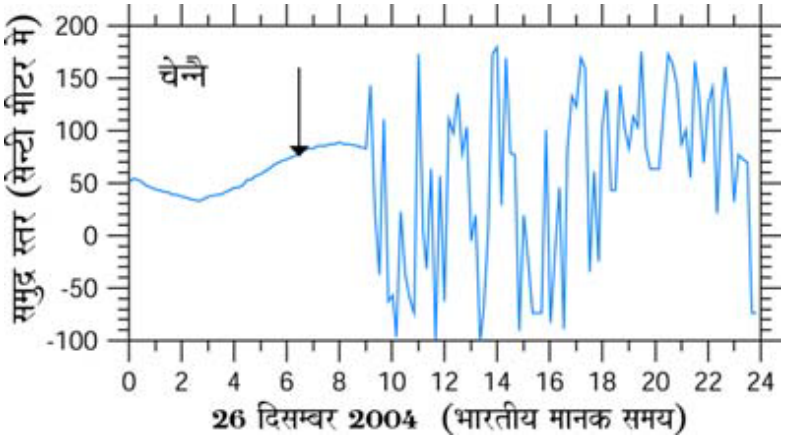

चित्र-२६ : चेन्नई में टाइड गेज से मापा गया समुद्र स्तर। तीर का निशान भूकम्प के आगमन का समय दर्शाता है।

(चित्र-९), और (३) सागर की तलहटी पर अथवा तट के निकट, थल पर होने वाले ज्वालामुखी उद्‌गार तलहटी को हिला सकते हैं। ऐसा भी हो सकता है कि इन उद्‌गारों में, बड़ी मात्रा में निकलने वाली राख सागर की तलहटी में बैठ जाए और पानी को बड़ी मात्रा में विस्थापित कर दे।

हिन्द महासागर में सुनामी कभी-कभी ही आती हैं। विश्व में पैदा होने वाली कुल सुनामियों में से केवल ०.८ प्रतिशत ही बंगाल की खाड़ी में रिकार्ड की गई हैं। अधिकांश सुनामियां प्रशांत महासागर में रिकार्ड की गई हैं और वे मुख्यत: अंत:समुद्री भूकम्पों के कारण ही उत्पन्न होती पाई गई हैं।

दिसम्बर २६, सन् २००४ को सुमात्रा, इंडोनेशिया, के तट पर सुबह ६ बजकर २६ मिनट पर (भारतीय समय के अनुसार) ९.३ परिमाण का (रिक्टर पैमाने पर) एक जबरदस्त भूकम्प आया था। इसका उद्‌गम स्थल ३.४° उत्तर अक्षांश और ९५.७° पूर्व देशान्तर पर स्थित था (चित्र-२५)। इस भूकम्प ने अत्यंत शक्तिशाली सुनामियां उत्पन्न कर दी थीं जिन्होंने इंडोनेशिया, श्रीलंका, भारत, थाइलैंड, म्यानमार और सोमालिया में ३,००,००० से भी अधिक व्यक्तियों की जान ले ली थी। ये विश्व की सर्वाधिक हत्यारी सुनामी थीं। इन्हें भारत तथा अन्य अनेक देशों के टाइड गेजों ने रिकार्ड किया था। चेन्नई में भूकम्प के २.५ घंटे बाद, भारत के पूर्वी तट पर, सुबह ९.०० बजे ये पहुँची और वहाँ इन्होंने सागर सतह पर के ज्वारभाटा के वारंवारता को बुरी तरह क्षोभित कर दिये थे (चित्र-२६)।

पुलिन

थल, सागर और वायु के बीच एक अनोखी सीमा के रूप में स्थित पुलिन (बीच) थल का ऐसा क्षेत्र होता है जहां अनेक कारक कार्यरत होते हैं। इस थलीय भाग पर लहरें निरंतर कार्यरत रहकर वहां की रेती को गतिशील बनाए रखती हैं। पुलिनों पर सीधे क्रिया करने वाले और उन पर परिवर्तन करने वाले कारकों में पवन और ज्वार

चित्र-२७ : तट के निकट तरंगिकाओं का उत्पादन

भी अपना योगदान देते हैं। इनके अतिरिक्त मानवीय हस्तक्षेप भी पुलिनों की प्रकृति में बदलाव लाते हैं। तरंगरोधों (ब्रेकवाटर), पोतघाटों (पायर), जेट्टियों और सी-वाल के निर्माण पुलिन पर होने वाले रेती की स्वाभाविक गति में बाधा उत्पन्न करके पुलिन में अनेक बड़े परिवर्तन ला सकते हैं।

वर्षा ऋतु में मानसून पवनों के कारण सागर में बहुत ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगती हैं। ये लहरें पुलिनों पर अपनी ऊर्जा खर्च करती हैं। ये पुलिनों को अपरदित करती हैं तथा तट के निकट की संरचना एवं गुणों में परिवर्तन कर देती हैं। इसके विपरीत साफ मौसम में निम्न ऊर्जायुक्त लहरें बालू में अभिवृद्धि करके अथवा उसे जमाकर पुलिनों का पुनर्निर्माण कर देती हैं। तट के निकट की लहरों की क्रिया का एक महत्वपूर्ण पहलू होता है तट के निकट जलधाराएं उत्पन्न करना (चित्र-२७)। ये जलधाराएं, जो वेलांचली (ळाँगशोर) अथवा अपतटीय (ऑफशोर) हो सकती हैं, पुलिन के रेती की गतिविधियों का आधार होती हैं। इस संबंध में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि मानसून पवनों के दौरान इन जलधाराओं की तीव्रता बढ़ जाती है जिससे ये उन लोगों के लिए, जो उस दौरान मनोरंजन हेतु सागर में जाते हैं, जोखिमपूर्ण हो सकती हैं। सागर की ओर जाने वाली वे प्रबल जलधाराएं जो तट के लंबवत् होती हैं, ''तरंगिकाएं'' (रिप करंट) अथवा ''हत्यारी जलधाराएं'' (किलर करंट) कहलाती हैं और उनसे हमें बचना चाहिए।

भारतीय तटों के ज्वारनदमुख

ज्वारनदमुख एक ऐसा जलमार्ग होता है जिसके एक सिरे पर सागर होता है और दूसरे सिरे पर नदी। उसमें समुद्री पानी काफी मिश्रित हो जाता है। शीर्ष (नदी सिरा) से लेकर मुख (सागर सिरा) तक उसका संपूर्ण लवणता परास ० से ३५ प्रति एक हजार भाग तक होता है। भारतीय तटों के साथ विभिन्न आकारों और आकृतियों के लगभग १०० ज्वारनदमुख हैं। प्रत्येक ज्वारनदमुख में नदी से जलनिकास मार्ग द्वारा मीठा पानी

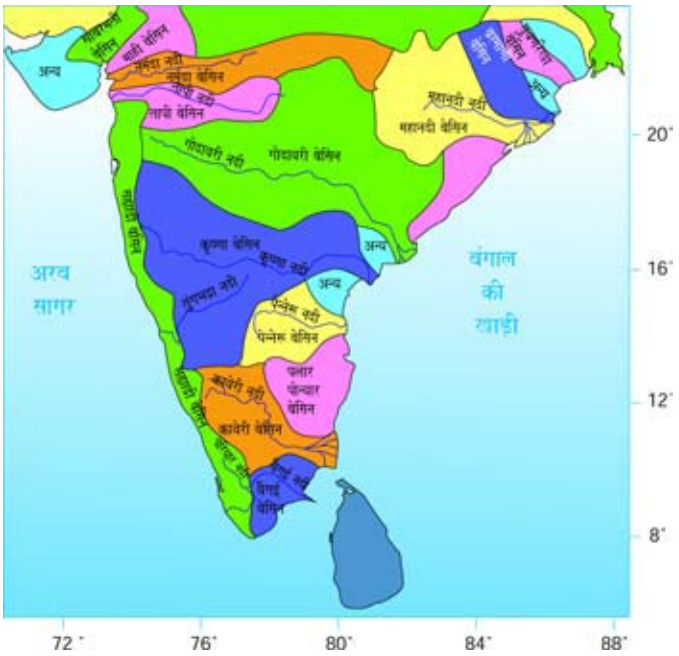

चित्र-२८ : भारत की प्रमुख नदी बेसिनें और ज्वारनदमुख

आता रहता है। चित्र-२८ में कुछ बड़े ज्वारनदमुख, भारत की प्रमुख नदियों के साथ दर्शाए गए हैं। ज्वारनदमुख के जलमार्ग सदा से ही मानव आबादियों के लिए पसंदीदा स्थल रहे हैं। ज्वारनदमुख के तट पर बसे लोग इनमें से मछली पकड़ते थे और इनके रास्ते से समुद्री व्यापार करते थे। आजकल इन्हें घरेलू और औद्योगिक व्यर्थ पदार्थों को फेंकने के लिए भी इस्तेमाल किया जाता है। ज्वारनदमुख आमतौर से जैव उत्पादन की दृष्टि से बहुत उत्पादक क्षेत्र होते हैं। वे जीव उत्पादन के साथ-साथ नदी पानी में घुले कुछ पदार्थों के लिए छन्ने का भी काम करते हैं। ये पदार्थ उस क्षेत्र में जहाँ नदी का पानी सागर में मिलता है, अवक्षेपित (प्रिसिपिटेट) हो जाते हैं। नदियों द्वारा बह कर आयी हुई पंक और बालू का रोक यहां बहुत महत्त्वपूर्ण होता है क्योंकि इस क्रिया के फलस्वरूप ही ज्वारनदमुख के इर्दगिर्द डेल्टा बनते हैं।

भारत के बड़े ज्वारनदमुख पूर्वी तट पर, बंगाल की खाड़ी में हैं। इनकी तुलना में पश्चिमी तट के ज्वारनदमुख छोटे हैं। पश्चिमी तट के ज्वारनदमुखों के दो उदाहरण हैं : मांडवी और जुआरी ज्वारनदमुख जो, दोना पावला, गोवा, के राष्ट्रीय समुद्रविज्ञान संस्थान के क्रमश: उत्तर और दक्षिण में स्थित हैं।

पृथ्वी पर जलचक्र

पृथ्वी को ''नीला ग्रह'' कहा जाता है क्योंकि अंतरिक्ष से देखने पर यह नीले रंग की दिखाई देती है। इसका नीला रंग पानी (सागर) के कारण है जिससे पृथ्वी का ७१ प्रतिशत भाग ढका है (चित्र-१)। हमारे इस ग्रह पर १.५ × $१०^{१८}$ टन (१ टन = १००० किलोग्राम) पानी में ०.०५ × $१०^{१८}$ टन लवण घुले हुए हैं। जलमंडल का यह भाग पृथ्वी की चट्टानों (भूमंडल), वायु (वायुमंडल) और जीवों (जीवमंडल) से अंत:क्रिया करता है।

सागरों का पानी वाष्प के रूप में वाष्पित होता है जो बाद में वायुमंडल में द्रवित होकर वर्षा अतवा हिम के रूप में धरती पर बरसता है (चित्र-२९)। अनुमान लगाया गया है कि इस जल चक्र में प्रतिवर्ष ०.४२ × $१०^{१५}$ टन पानी परिसंचरित होता है। वर्षा या हिमपात के रूप में बरसने वाला पानी नदी-नालों में से बहकर अंतत: सागर में पहुँच जाता है और वह अपने साथ पपडी से अपक्षयित (वैदर्ड) और

चित्र-२९ : पृथ्वी के जल चक्र का व्यवस्थात्मक चित्र

अपरदित (इरोडेड) पदार्थ भी बहाकर ले आता है। इस प्रकार प्रतिवर्ष ८ × १०^{१२} टन पदार्थ थल से सागरों को स्थानांतरित हो जाता है। इसमें से लगभग दो-तिहाई अघुलनशील पदार्थों (चट्टान, कंकड़, रेत, गाद आदि) के रूप में होता है और बाकी पानी में घुला हुआ होता है।

समुद्री पानी में तत्व कहां से आए?

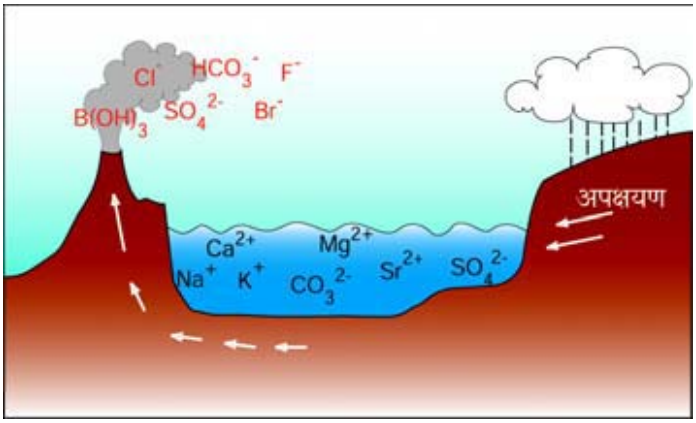

चित्र-३० : समुद्री पानी के विभिन्न तत्वों के स्रोत

समुद्री पानी में अधिकांश तत्व पपड़ी के खनिजों के रासायनिक अपक्षयण से आते हैं और कुछ वायुमंडल से। पपड़ी मुख्यत: आवर्त सारणी (पीरीओडिक टेबल) के ग्रुप १ और २ की धातुओं के और लोहे के सिलिकेटों और एलूमिनोसिलिकेटों से निर्मित हैं। साथ ही उसमें इन धातुओं के कार्बोनेट भी मौजूद होते हैं। वर्षा जल आमतौर से अम्लीय होता है क्योंकि वायुमंडल और मृदा में से गुजरने के दौरान वह कार्बन डाइआक्साइड से क्रिया करके कार्बोनिक एसिड (H_2CO_3) बना लेता है और उसकी मदद से अधिकांश धातु सिलिकेटों और कार्बोनेटों को अपने में घोलता है। इस क्रिया में कार्बोनेटों का अपक्षयण अधिक शीघ्रता से होता है। पानी में घुले ये पदार्थ आमतौर पर आयनों के रूप में होते हैं और ये आयन अंतत: सागर में पहुँच जाते हैं (चित्र-३०)। वायु - सागर अंतरा पृष्ठ (इंटरफेस) पर वायुमंडल में मौजूद गैसें (नाइट्रोजन, आक्सीजन, कार्बन डाइआक्साइड आदि) पानी में घुल कर सागर में प्रवेश कर जाती हैं। वैसे वायुमंडल में थोड़ी मात्राओं में सलफ्यूरिक और नाइट्रिक एसिड भी मौजूद होते हैं। ये वर्षा जल के वायुमंडल में से गुजरने के दौरान उसके क्रमश: सल्फर और नाइट्रोजन के आक्साइडों के साथ क्रिया करने से बनते हैं।

पपड़ी में बहुत सूक्ष्म मात्राओं में फ्लोराइड़, क्लोराइड, ब्रोमाइड, सल्फेट और बोरेट आयनों की उपस्थिति यह दर्शाती है कि, वे कदाचित् ज्वालामुखी गैसोंत्पन्न होते हैं और वर्षा जल में घुलकर पपड़ी तक पहुँचे हैं।

समुद्री पानी में घुले लवणों के बारे में एक विचित्र तथ्य यह है कि नदियों द्वारा सागर में प्रतिवर्ष बहुत बड़ी मात्रा (२.५ × १०^{१२} टन) में घुले लवण मिलते रहने के बावजूद भी उसमें लवणों की मात्रा बढ़ती नहीं। हम समझते हैं कि पृथ्वी के इतिहास के आदिकाल में

ही सागरों में लवणों की मात्रा वर्तमान स्तर तक पहुँच चुकी थी और उसके बाद सागरों ने उस स्तर को, बिना किसी लाभ-हानि के, बनाया रखा है। वैसे सागरों की लवणता, क्षेत्रों के अनुसार बदलती रहती है। खुले सागर के पानी में औसतन एक हजार भाग में ३५ भाग लवण घुले होते हैं परंतु भूमध्य सागर के पानी में उनकी मात्रा ३९ भाग और लाल सागर में ४१ प्रति एक हजार भाग है।

समुद्री पानी के प्रमुख तत्व

समुद्री पानी में १ मिलीग्राम प्रति लीटर से अधिक मात्रा में मौजूद होनेवाले तत्व ''प्रमुख तत्व'' कहलाते हैं (सारणी-१):

ये तत्व ही समुद्रीपानी की लवणता का निर्धारण करते हैं। लवणता के साथ अथवा आपस में एक- दूसरे के साथ इनका अनुपात लगभग स्थिर रहता है। ये ''संरक्षी तत्व'' (कंजरवेटिव तत्व) भी कहलाते हैं। समुद्री पानी का मुख्य घटक है साधारण नमक (सोडियम क्लोराइड) और यह ही उसे खारीपन प्रदान करता है। वह समुद्री पानी में पृथक-पृथक जलयोति सोडियम आयनों (Na^+) और जलयोति क्लोराइड आयनों (Cl^-) के रूप में मौजूद होता है।

समुद्री पानी के गौण तत्व

समुद्री पानी में आवर्त सारणी के अधिकांश अन्य तत्व भी मौजूद होते हैं। उन्हें ''गौण'' और ''रंच'' (ट्रेस) तत्व कहा जाता है। इनमें ही शामिल हैं सूक्ष्मपोषक पदार्थ (माइक्रोन्यूट्रीएंट) N,P,Si और Fe जो सागर में जैव उत्पादन के लिए आवश्यक होते हैं। इनका वितरण क्षैतिज और ऊर्ध्वाधर परिसंचरणों और

सारणी - १: ३४.५ प्रति एक हजार भाग लवणता वाले समुद्रीपानी में उपस्थित प्रमुख तत्व, उनके आयनिक रूप और उनके स्तर

तत्व	सांद्रता	प्रतिशत मात्रा
Cations		
Sodium, Na^+	10500	30.42
Magnesium, Mg^{2+}	1350	3.91
Calcium, Ca^{2+}	400	1.16
Potassium, K^+	380	1.10
Strontium, Sr^{2+}	8	0.02
Anions		
Chloride, Cl^-	19000	55.04
Sulphate, SO_4^{2-}	2665	7.69
Carbonate, CO_3^{2-}	140	0.41
Bromide, Br^-	65	0.19
Borate, BO_3^{3-}	20	0.06
Silicate, SiO_3^{2-}	8	0.02
Fluoride, F^-	1	0.003

जैवभूरासायनिक (बायोजिओकैमिकल) प्रक्रमों के उपयोग तथा पुन:उत्पादन पर निर्भर होता है। अन्य तत्वों में स्वर्ण भी सभी सागरों में धुले हुए रूप में पाया जाता है। यद्यपि समुद्री पानी में उसकी सांद्रता अत्यन्त निम्न (०.०००००४ मिग्रा/लीटर) है परंतु विश्व के सभी सागरों में ५६ लाख टन सोना मौजूद है। उसकी अत्यंत निम्न सांद्रता के फलस्वरूप उसे समुद्री पानी में से निकालना आर्थिक रूप से लाभदायक नहीं होता।

समुद्री पानी की संयोजन क्यों नहीं बदलती?

सागर के पानी में लवणों की मात्रा के सदृश्य ही उसके घटकों की सांद्रता भी नहीं बदलती। वह अपरिवर्तित आती रही है। इसके लिए जरूरी है कि समुद्री पानी में से घुले आयनों के निष्कासन और उनके मिलने की दरें बराबर हों। वे प्रक्रम जिनसे आयनों का निष्कासन होता है, निम्न है :

(१) वाष्पन अवक्षेपण : गर्म और सूखे क्षेत्रों में, जहां सागर उथला और थल से घिरा होता है उसके पानी में से नमक (सोडियम क्लोराइड) और जिप्सम (कैल्शियम सल्फेट) अलग होकर जमने लगते हैं।

(२) रासायनिक अवक्षेपण : जब किसी लवण की सांद्रता बहुत अधिक बढ़ जाती है तब वह ठोस अवक्षेपण बनाने लगता है। उदाहरण के तौर पर चूना पत्थर कैल्शियम कार्बोनेट) बनता है।

(३) जैवरासायनिक निष्कासन : सागर के जीव उसके पानी में से अपमार्जन (स्कैवेंजिंग) द्वारा आयनों का निष्कासन कर लेते हैं। कोरल और सीपे जैसे कुछ प्राणी पानी में से कैल्शियम कार्बोनेट अपमार्जित करके अपने खोल बना लेते हैं। अनेक जीव अपने शरीर में समुद्री पानी की तुलना में १०^{५} (एक लाख) गुने या उससे अधिक आयन सांद्रित कर लेते हैं। उदाहरण के तौर पर सी स्क्वर्ट अपने शरीर में वैनैडियम, अन्य ट्यूनिकेट निओबियम, सीप जस्ता, लोबस्टर तांबा, और अन्य शेलफिश पारा सांद्रित कर लेती हैं।

महासागरों में, विशेष रूप से उसके ऊपरी परतों में, जीवन

महासागर जीवन का पालना है। इस जलीय वातावरण में जीवन विविध रूपों में विकसित हुआ है। कुछ जीव मुक्त रूप से जीवन यापन करने वाले प्लैंक्टनों के रूप में विकसित हो गए जो पानी के साथ बहते रहते हैं तो कुछ तरणकों (नेकटन) के रूप में, जो तेजी से तैर सकते हैं। कुछ प्रजातियां सागर की तलहटी में रहने लगीं और नितलक (बेंथोज) कहलायीं। वे तलहटी को चिपक कर (सेसिल) रहती हैं अथवा उनमें कभी क्षीण गतिशीलता भी मौजूद हो सकती है।

सागर में जीव उसके भौतिक और रासायनिक गुणों यथा ताप, लवणता, पोषकता, प्रकाश और द्रवस्थैतिक (हाइड्रोस्टेटिक) दाब से नियंत्रित होत हैं। वैसे जीवों ने स्वयं को लवणता सहन करने के लिए अनुकूलित कर लिया है। अंर्तज्वारीय (इंटर टाइडल) और ज्वारनदमुख क्षेत्रों में रहनेवाले जीव उन सब प्रकार के जलों में रह सकते हैं जिनकी लवणता मीठे पानी से लेकर पास के समुद्री पानी जैसी होती है। जहां तक ताप-सह्यता का प्रश्न है, समुद्री जीव लगभग हिंमांक से लेकर उष्णकटिबंधीय परिस्थितियों तक के सब ताप सहन कर सकते हैं। परंतु इन सबके बावजूद हर जीव-प्रजाति लवणता और ताप के अपेक्षाकृत छोटे परास में ही जीवनयापन करती हैं।

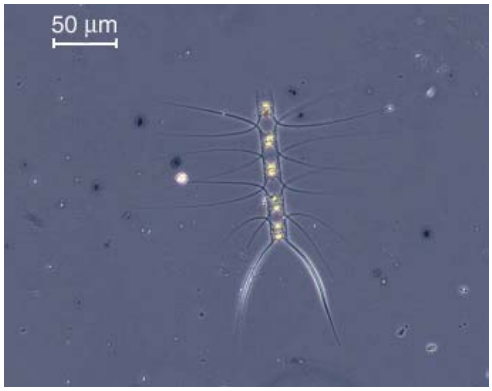

चित्र-३१ : श्रृंखला बनाने वाली पादपप्लैंक्टन प्रजाति चेटोसेरॉस

जीवों को शरीर वृद्धि और वंश-वृद्धि के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। इसे वे प्रकाशसंश्लेषण (फोटोसिंथेसिस), रसोसंश्लेषण (कीमोसिंथेसिस) द्वारा प्राप्त करतें हैं। पौधे ऊर्जा प्रकाशसंश्लेषण द्वारा; स्वपोषी (ऑटोट्रापिक) बैक्टीरिया कहीं भी, और मध्य महासागरीय पर्वत श्रृंखला के ''गर्म झरनों'' के निकट बड़े समूहों में रहने वाले जीव रसोसंश्लेषण द्वारा ऊर्जा प्राप्त करते हैं परंतु परपोषित जीव (हेटेरोट्रापिक बैक्टीरिया) पानी में घुले पदार्थों को ग्रहण करके ऊर्जा प्राप्त करते हैं। इन विभिन्न क्रियाविधियों को मोटे तौर से ''पोषी स्तरों'' (ट्रापिक लेवल) के अनुसार वर्गीकृत किया जा सकता है :

(१) प्रकाशसंश्लेषी जीव जो थल और सागर, दोनों में, निम्नतम पोषी स्तर का निर्माण करते हैं, प्राथमिक उत्पादक (प्राइमरी प्रोड्यूसर) कहलाते हैं। सागर में एककोशिक (यूनीसैलूलर) पादपप्लैंकटन (चित्र-३१) सूर्य के प्रकाश और पोषक लवणों की उपस्थिति में कार्बन डाइआक्साइड का प्रकाशसंश्लेषी यौगिकीकरण (फिक्सेशन) कर लेते हैं। प्राथमिक उत्पादन का यह प्रक्रम ''प्रकाशी क्षेत्र'' में (सागर के उस ऊपरी भाग में जहां सूर्य का प्रकाश पहुँच सकता है) होता है। साफ उष्णकटिबंधीय अपतटीय सागर में प्रकाशी क्षेत्र १०० मीटर के नीचे भी फैला होता है परंतु तट के निकट के उथले सागरों में, आविलता के बढ़ जाने से सौर प्रकाश काफी कम गहराई तक ही प्रवेश कर पाता है। पादपप्लैंक्टनों में पीकोप्लैंक्टनों का आकार २ माइक्रोन से भी छोटा होता है। नैनोप्लैक्टन २-२० माइक्रोन आकार के और माइक्रोप्लैंक्टन २०-२०० माइक्रोन तक (मानव बाल की मोटाई लगभग ८० माइक्रोन होती है) के होते हैं।

(२) प्राथमिक उत्पादनों के ऊपर के पोषी स्तर में प्राथमिक उपभोक्ता (प्राइमरी कंज्यूमर) होते हैं। ये हैं, जंतुप्लैंक्टन जो पादपप्लैंक्टनों का भक्षण करते हैं। पादपप्लैंक्टनों के समान इन्हें भी नैनो और माइक्रो जंतुप्लैंक्टनों में वर्गीकृत किया जाता है। मेसो - जंतुप्लैंक्टन, जो २० से लेकर २०० माइक्रोन तक के आकार के सागर के महत्त्वपूर्ण जीव होते हैं। इनमें कोपीपोड़ों की संख्या सबसे अधिक होती है।

(३) वे जंतु (जंतुप्लैंक्टन, मछली) जो ''शाकाहारी'' जंतुप्लैंक्टनों का भक्षण करते हैं द्वितीयक उपभोक्ता (सेकंडरी कंज्यूमर) होते हैं और सिद्धांतत: वे अगले, उच्चतर, पोषी स्तर का निर्माण करते हैं।

(४) मांसाहारी मछली, स्क्विड और कछुओं आदि पोषी स्तर के शीर्ष होते हैं। कभी-कभी इन्हें तृतीयक उपभोक्ता (टरशरी कंज्यूमर) भी कहा जाता है।

सब पोषी स्तर आपस में संबंधित होते हैं। इसलिए मछली-बहुल क्षेत्रों के बारे में जानकारी एकत्रित करने हेतु अन्य पोषी स्तरों पर भी ध्यान देना चाहिए (चित्र-३२)। वैसे प्रत्येक चरण में मुख्य रूप से भक्षण करने वाले जीव की अपूर्ण पाचन क्षमता और उपापचय के तरीकों के कारण ८०-९० प्रतिशत जैव पदार्थ अथवा ऊर्जा की हानि हो जाती है। इसीलिए खाद्य चक्र के शीर्ष पर स्थित मासांहारी जीवों को अपेक्षाकृत कम भोजन मिल सकता है। उपापचय से पोषक लवणों और कार्बन डाइआक्साइड का पुन: उत्पादन हो जात है जबकि कुछ ''अपूर्ण पचन हुए'' पदार्थ कार्बनिक जैव स्रवण, विष्ठा और मृत ऊतकों के रूप में होते है। इन्हें बैक्टीरिया और कवक जैसे परपोषी जीव अपना जीव अपना भक्ष्य कर लेते हैं।

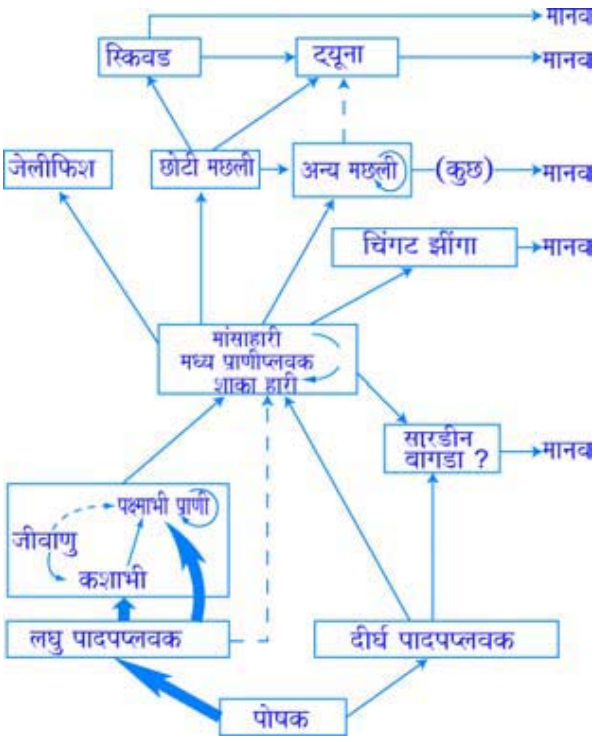

चित्र-३२ : खुले सागर के खाद्य जाल के कुछ पहलू : बाक्सों में दर्शाए गए वृत्ताकार तीर के निशान वर्ग विशेष के भीतर ही होने वाला भक्षण दर्शाते हैं; ''छोटी मछली'' से तात्पर्य क्षुद्र मछली प्रजाति अथवा बडी मछलियों के बच्चे हो सकते हैं। धुले हुए कार्बनिक पदार्थ और उपापचय के फलस्वरूप मुक्त होनेवाले पोषकों का ''पुनर्भरण'' नहीं दर्शाया गया है।

समुद्री पानी के हर मिलीलीटर में औसतन दस लाख बैक्टीरिया - कोशिकाएं होती हैं और

वे पोषक लवणों के पुन: चक्रण का महत्त्वपूर्ण कार्य करती हैं। इन बैक्टीरियाओं को खाते हैं अनेक सूक्ष्मदर्शी जीव यथा फ्लेजेलेट और सिलिएट और जिनका भक्षण करते हैं मेसोजंतुप्लैंक्टन।

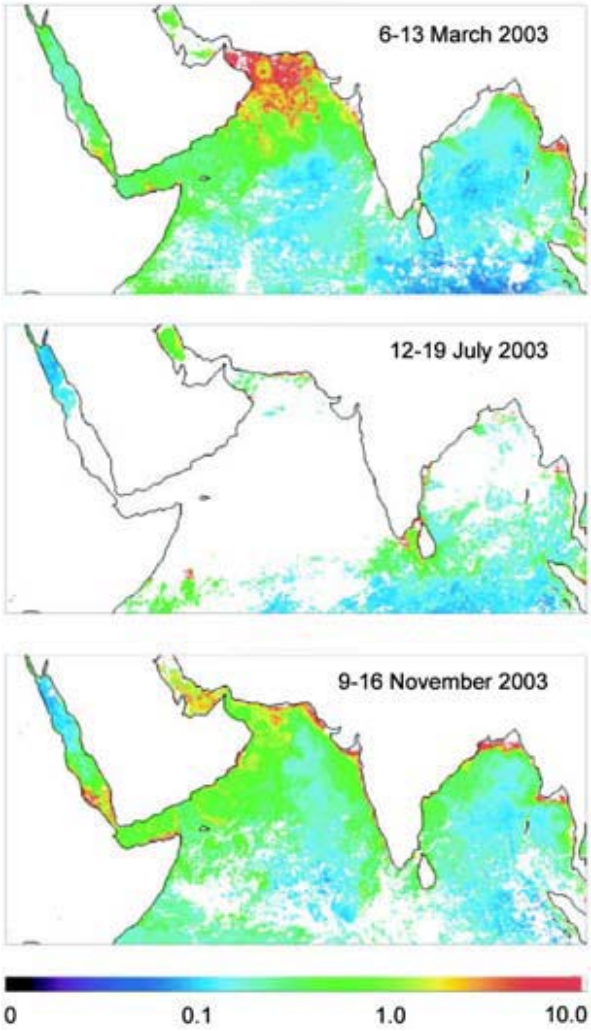

चित्र-३३ : उत्तरी हिन्द महासागर में क्लोरोफिल सांद्रता (मिग्रा/मी³) को छद्म रंग में दर्शाने वाला उपग्रह चित्र।

वास्तव में सागर में जीव थल जैसी खाद्य श्रृंखला नहीं बनाते (यथा घास-गाय-शेर) वरन् एक ऐसा खाद्य जाल (फूड वेब) बनाते हैं जिसमें भक्षण शिकार के आकार के अनुसार होता है उसकी जाति के अनुसार नहीं। २०० माइक्रोन की पादपप्लैंक्टन कोशिका का द्रव्यमान २-माइक्रोन की कोशिका से दस लाख गुना बड़ा होता है। उनमें लगभग वैसा ही अनुपात होता है जैसा हाथी और छोटी चुहिया के बीच। छोटे प्लैंक्टनों और तरणक जीवों के बीच यह अनुपात कहीं बड़ा होता है। जिस प्रकार कोई हाथी चुहिया का शिकार नहीं करता उसी प्रकार समुद्री जीव भी केवल एक सीमित आकार तक के जीवों को ही अपना शिकार बना सकते हैं। परन्तु थलीय जीवों के एकदम विपरीत सागर में एक बड़ी ''बकरी'' आमतौर से, और आसानी से, एक छोटे ''भेड़ियें' का भक्षण कर लेती है और पोषी स्तर की धारणा को गलत सिद्ध कर देती है। इसी प्रकार अनेक किस्म की पादपप्लैंक्टन प्रजातियां कणों (मिश्रपोषियों - मिक्सोट्राप) का भी भक्षण कर सकती हैं। इसलिए हम केवल प्राथमिक उत्पादन दर से किसी क्षेत्र से प्राप्त हो सकने वाली मछलियों की मात्रा का अनुमान नहीं लगा सकते। इसके दो कारण है खाद्य जाल में एक प्रजाति विशेष के पोषी स्तर के बारे मे अनिश्चितता और साथ ही किसी खाद्य जाल में किस प्रजाति विशेष के लिए, उस खाद्य जाल के अन्य सदस्यों की प्रतिस्पर्धा में, कितना भोजन उपलब्ध है।

सागर में सब जीव, चाहे वे किसी भी पोषी स्तर से संबंध रखते हों एक जटिल खाद्य जाल

द्वारा आपस में एक-दूसरे से संबंधित रहते हैं। इस खाद्य जाल की संरचना सागर के भौतिक और रासायनिक गुणों द्वारा निर्धारित होती है। अरब सागर और बंगाल की खाड़ी, उष्णकटिबंधीय सागर होने के नाते, वर्ष भर समुचित ताप और प्रकाश परिस्थितियां प्रदान करते हैं जिससे चिरकालीन प्राथमिक उत्पादन अपेक्षित है, परंतु सदैव ऐसा नहीं हो पाता क्योंकि ऋतुओं के अनुसार पोषक पदार्थों की मात्राएं सीमित हो जाती हैं।

पादप्लैंक्टनों के शरीरवृद्धि और वंश-वृद्धि के लिए खनिज पोषक पदार्थ (नाइट्रेट, अमोनियम, फास्फेट, सिलिकेट और लोहा) भी अति आवश्यक होते हैं। पोषक पदार्थों को सागर के गहरे भागों से उसकी सतह पर लाने हेतु कुछ भौतिक प्रक्रम यथा उत्स्रवण (अपवेलिंग), - जिसमें सागर के गहरे भागों का अपेक्षाकृत ठंडा पानी सतह पर आता रहता है; जलराशिक वाताग्र (हाइड्रोग्राफिक फ्रंट) - ऐसे क्षेत्र जिन पर ताप, और लवणता जैसे गुणों में, क्षैतिज रूप से एकाएक परिवर्तन आ जाता है, भंवर और चक्रवात आदि, उत्तरदायी होते हैं। इनसे प्राथमिक उत्पादन को बढ़ावा मिलता है। दक्षिणपश्चिम मानसून, भारत के पश्चिमी तट के साथ बहने के दौरान, उत्स्रवण क्रिया आरम्भ कर देती है। इससे पोषक पदार्थ गहराई से सतह पर आ जाते हैं। ये प्राथमिक उत्पादन बढ़ाने में और परिणामस्वरूप वर्षा ऋतु में मछलियों की मात्रा में वृद्धि करने में, महत्वपूर्ण योग देते हैं। बंगाल की खाड़ी में सतह के पानी में पोषक पदार्थों को समावेशित करने और इस प्रकार खाड़ी मे प्राथमिक उत्पादन को बढ़ाने मे अन्य कारकों के साथ-साथ चक्रवात भी बहुत योग देते हैं। समुद्री पानी की उर्वरता का मूल्यांकन उसमें मौजूद क्लोरोफिल की मात्रा से, जो पादपप्लैंक्टनों की उपस्थिति का एक माप होता है, किया जा सकता है। सागर की उर्वरता का अनुमान ओशन कलर रिमोट सैसिंग से आसानी से, सही तरीके से, लगाया जा सकता है (चित्र - ३३)।

गहरे सागर में जीवन

गहरे सागर में जीव, मुख्य रूप से ऊपरी सतह के ५०-१०० मीटर के सौर ऊर्जा से प्रभावित जल स्तंभ में होने वाले जैव उत्पादन द्वारा संपोषित (ससटेन) होते हैं। कार्बन का सागर की इस ऊपरी सतह से गहरे भागों की ओर स्थानांतरण मृत जीवों के शरीर, उनकी विष्ठा और विभिन्न जंतुओं के कैल्शियम कार्बोनेट के खोलों के डूबने से होता रहता है। वैज्ञानिक इस प्रक्रम को ''जैव पम्प'' (बायोलॉजिकल पम्प) कहते हैं। वैसे गहरे सागर में, उच्च द्रवस्थैतिक दाब, निम्न ताप, पूर्ण अंधकार और ऊपर से मिलने वाले भोजन पर पूर्ण निर्भरता, के बावजूद भी, जीवन पनपता रहता है। सागरों की ३७०० मीटर की औसत गहराई पर लगभग ३७० वायुमंडल के बराबर द्रवस्थैतिक दाब बना रहता है परंतु गहरे सागर में निवास करने वाले जीवों ने इन विषम परिस्थितियों का मुकाबला करने के लिये क्रियाविधियां

विकसित कर ली हैं। सागर के गहरे भागों मे जीवों का घनत्व अपेक्षाकृत कम होता है परंतु इस संबंध में उष्णालीय मुख (देखिए पृष्ठ ४) उल्लेखनीय अपवाद हैं। इन मुखों में और इनके इर्दगिर्द के क्षेत्र में जीवों की उच्च विविधता होती है और सहजीवी (सिम्बिओंट) के रूप में कार्य करने वाले केवल बैक्टिरियाओं द्वारा ही वहां बायोमास पनपती रहती है। उष्णालीय मुखों में प्रकाशसंश्लेषण की बांए रसोसंश्लेषण प्रक्रम ही खाद्य जाल को कार्यान्वित करता रहता है।

चित्र-३४ : उच्च ज्वार के दौरान मैंग्रोव वन

तटीय समुद्री पर्यावरण

तटीय समुद्री पर्यावरण का, जिसमें अंतरज्वारीय क्षेत्र, ज्वारनदमुख, समुद्री खरपतवार और समुद्रीघास संस्तर, मैंग्रोव वन और कोरल भित्तियां शामिल होती हैं, मानव समाज पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है क्योंकि इनसे मनुष्यों को सामाजिक और आर्थिक लाभ होते हैं। तटीय पर्यावरण में प्राथमिक उत्पादक के रूप में पादपप्लैंक्टनों के अतिरिक्त बड़े बहुकोशिक (मल्टीसैल्यूलर) अंतरज्वारीय (इंटरटायडल) और नितलस्थ शैवाल भी निवास करते हैं। भारतीय तटों पर स्थित दो प्रमुख पारितंत्र (इको सिस्टम) हैं : मैंग्रोव वन और कोरल भित्तियां। मैंग्रोव (चित्र-३४) थल क्षेत्र की अपरदन से रक्षा करते हैं। भारत के पूर्वी तट पर पाए जाने वाले बड़े मैंग्रोव वनों में गंगा के डेल्टा में स्थित सुंदरबन और कृष्णा - गोदावरी के डेल्टा में स्थित वन भी शामिल हैं। वैसे भारत के पश्चिमी तट पर भी विस्तृत मैंग्रोव वन हैं परंतु उनमें से अनेक को धान के खेतों अथवा श्रिंप कलचर तालों में परिवर्तित कर लिया गया है।

चित्र-३५ : कोरल भित्ति पारितंत्र

चित्र-३६ : अरब सागर में स्थित लक्षद्वीप समूह का एक टापू

कोरल भित्तियां वास्तव में अंत:जलीय स्वर्ग होती हैं। उनमें पाए जाने वाली जैवविविधता की तुलना उष्णकटिबंधीय वर्षा वनों से की जा सकती है (चित्र - ३५)। तटीय (फ्रिजिंग) कोरल भित्तियां बंगाल की खाड़ी में स्थित अंडमान - निकोबार द्वीप समूह के इर्दगिर्द बहुतायत से पाई जाती हैं जबकि अरब सागर में स्थित लक्षद्वीप समूह में कोरल ॲटाल पाए जाते हैं (चित्र - ३६)। सागरों के मध्य क्षेत्र में, जहां आवश्यक पोषक पदार्थों की कमी होती है, कोरल भित्तियों की उपस्थिति जहाँ प्राथमिक उत्पादन एवं जैवविधिता अधिक मात्रा में होती है, हमें मरुस्थल के बीच मरुउद्यान (ओएसिस) की याद दिलाती है। सीमित साधनों के बावजूद कोरल भित्ति पारितंत्रों की उल्लेखनीय समृद्धि उनकी कार्य कुशलता की परिचायक है। उनमें पोषक पदार्थों का सावधानीपूर्वक संरक्षण होता है और उन्हें आसपास के वातावरण को, अधिक हानि पहुँचाए बिना, पुन:संचरित कर दिया जाता है। इस प्रकार कोरल भित्तियों में जीवों के कार्य करने की पद्धति एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से युग्मित होती है।

महासागरों की जैवविविधता

महासागरों की जैवविविधता (प्रजातियों की संख्या) अब भी रहस्य बनी हुई है। समझा जाता है कि अब तक ०.१ प्रतिशत से भी कम बैक्टीरियाई प्लैंक्टनों की विविधता की खोज हुई है। साथ ही गहरे सागर की अवसाद को, अब तक अज्ञात जैवविविधता का, एक अन्य स्रोत समझा जाता है। यद्यपि थल पर प्रजातियों (स्पीशीज) की विविधता अधिक है परंतु सागर में जाति (फाइलमों) की संख्या ज्यादा है।

महासागरों के आकार और आयतन इतने विशाल हैं कि उनकी विशालता ही उन्हें पृथ्वी की जलवायु को नियंत्रित करने वाला एक प्रमुख कारक बना देती है और इस कार्य में जीव-जंतुओं को भी काफी श्रेय दिया जा सकता है। पृथ्वी पर कार्बन डाइआक्साइड एक प्रमुख ग्रीनहाऊस गैस है और प्रकाशसंश्लेषण एक मूलभूत क्रियाविधि जिससे वह जीवित प्राणियों के ऊतकों में और उनके मृतपदार्थ में प्रच्छादित (सेक्वेस्टर) होती है। कार्बन डाइआक्साइड केवल वायुमंडल में ही उपस्थित नहीं वरन् वह सागरों के पानी में भी घुली हुई है। महासागर के पानी में घुली उसकी मात्रा ३८ × $१०^{१२}$ टन है जो वायुमंडल में उपस्थित मात्रा से लगभग ६० गुनी अधिक है। सागर में होने वाले प्राथमिक उत्पादन की और समुद्री जीवों द्वारा कैल्शियम कार्बोनेट के उत्पादन की मात्राएँ भूमंडलीय कार्बन चक्र में सागर के योग का निर्धारण करती है। इन प्रक्रमों के विवरणों को समझना अब भी सागरविज्ञान के लिए एक चुनौती बना हुआ है।

सागर से खनिज

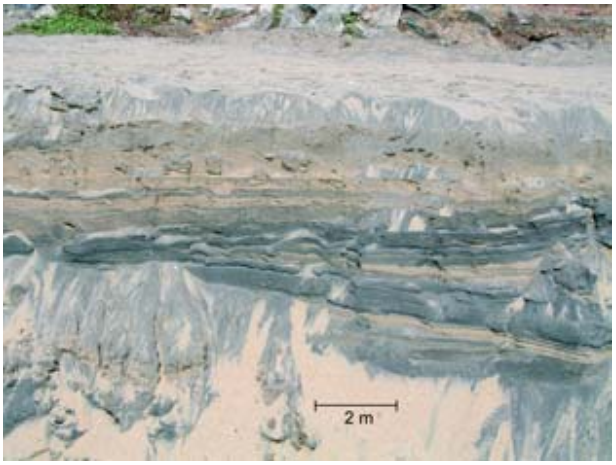

चित्र-३७ : पुलिन मे एक ऊर्ध्वाकार सेक्शन मे प्लेसर खनिज के स्तर।

सागर में विविध प्रकार के खनिज उपलब्ध हैं। इन में से अनेक को विविध धातुओं के भविष्य के विकल्पी स्रोत समझा जा सकता है। इन खनिजों में शामिल हैं प्लेसर जमावटें जो भौतिक रूप से सांद्रित ऐसे खनिज भंडार हैं जिनका निर्माण अपरदित अभितटीय (आँनशोर) चट्टानों से हुआ है। तट के निकट की लहरें नदियों और ग्लेशियरों द्वारा लाए जाने वाले खनिजों को भारी (आपेक्षित घनत्व > २.८) और हलके खनिजों में बाँट देती हैं तथा भारी खनिजों को पुलिनों और वारनदमुखों पर इकट्ठा कर देती हैं (चित्र-३७)। प्लेसर जमावटों के कुछ उदाहरण हैं : प्राकृत (नेटिव) अवस्था में तत्व (हीरा, सोना और प्लैटिनम) अथवा इल्मेनाइट, रूटाइल, मैग्नेटाइट, जिरकोन, मोनाजाइट, गार्नेट, कोरंडम जैसे खनिज। भारत की पुलिनों पर पाई जाने वाली कुछ प्रसिद्ध प्लेसर जमावटें हैं : रत्नागिरी की इल्मेनाइट बालू, केरल की मोनाजाइट और जिरकोन बालू तथा विशाखापत्तनम की गार्नेट बालू।

ऊलाइट कैल्शियम कार्बोनेट के ऐसे अकार्बनिक (इनआर्गेनिक) रासायनिक अवक्षेप हैं जो उथले (< १० मीटर) अतिलवणीय(हाइपर-सैलाइन) समुद्री पर्यावरण में जमा होते हैं। ये मुंबई, विशाखापत्तनम और चेन्नई के महाद्वीपीय शेल्फों पर पाए जाते हैं। फास्फोराइट अथवा अवसादी फास्फेट (> १८% P_2O_5) जमावटें, महाद्वीपीय शेल्फ या ऊपरी महाद्वीपीय शेल्फ या ऊपरी महाद्वीपीय ढलान पर कार्बनिक बहुल जमावटों से संबद्ध जैवभूरासायनिक प्रक्रमों से बनती हैं (चित्र-३८)। ये भारत के पूर्वी और पश्चिमी, दोनों, तटों पर पाई जाती हैं। उत्तर भारत में मसूरी और उदयपुर के निकट पाई जाने वाली फास्फोराइट जमावटें अब से करोड़ों वर्ष पूर्व समुद्री परिस्थितियों

चित्र-३८ : भारत के पूर्वी महाद्वीपीय शेल्फ की फास्फोराइट जमावटें

में निर्मित हुई थीं। बेराइट जमावट ($BaSO_4$) गहरे सागर के अवसादों में कार्बनिक और जैविक अवशेषों के साथ पाई जाती हैं। वे ज्वालामुखीय क्रियाओं से भी संबद्ध होती हैं। जिओलाइट गहरे सागर की तली में अंत:समुद्री ज्वालामुखी चट्टानों के परिवर्तित उत्पाद हैं। फिलीप्साइट, इनलसाइम, हार्मोटोम और क्लिनोप्टिलोलाइट कुछ जिओलाइट खनिजों में से हैं।

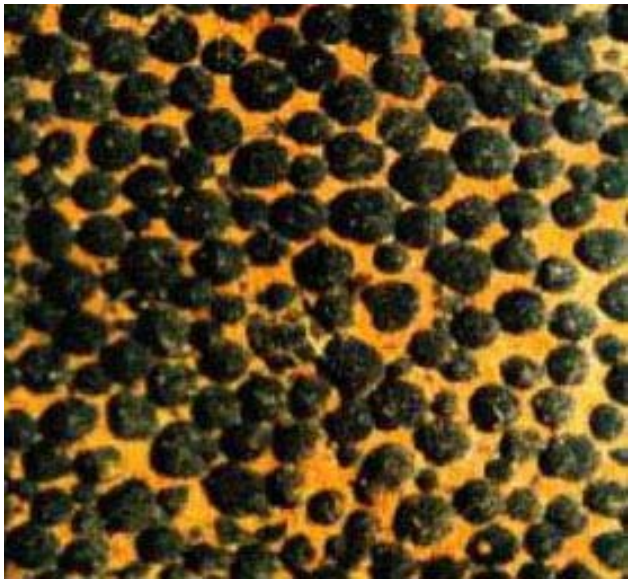

चित्र-३९ : सागर से प्राप्त लौहमैंगनीज खनिज

लौह-मैंगनीज जमावटें महासागरों की गहरी (४-५ किलोमीटर गहरी) बेसिनों के ऐसे क्षेत्रों में बनती हैं जो थलीय अभिवाहों (फ्लक्स) के प्रभाव से दूर होते हैं (चित्र-३९)। ये पिंडिकाएं (१० सेमी. तक के आकार की गोल पिंडिकाएं) और पपड़ियां (सागर तली पर उभरी हुई चट्टानों पर जमी परतें) के रूप में पाई जाती हैं। ये महत्त्वपूर्ण जमावटें हैं। ये केवल लौह और मैंगनीज की उच्च मात्राओं की उपस्थिति के कारण ही महत्वपूर्ण नहीं हैं वरन् तांबा, निकिल और कोबाल्ट की उपस्थिति (कुल मात्रा २.५ प्रतिशत) की वजह से भी महत्वपूर्ण हैं। इन पिंडिकाओं का निर्माण १-३ मिमी. प्रति दस लाख वर्ष की दर से होता है और ये सागर की तली पर अथवा उसके कुछ सेन्टीमीटर नीचे मौजूद होती है। कोबाल्ट की उच्च मात्रा (०.२५ से १ प्रतिशत) वाली भूपपडी आमतौर से समुद्री टीलों, उभरे हुए कगारी क्षेत्रों और मध्य महासागरीय पर्वत श्रृंखलाओं पर पाई जाती हैं।

उष्णजलीय जमावटें समुद्रीपानी और जलमग्न ज्वालामुखी उद्गारों के पदार्थो की अंत:क्रिया के फलस्वरूप बनती हैं। ये आन्तरिक रूप से संपूर्ण मध्य महासागरीय पर्वत श्रृंखला व्यवस्था (विशेष रूप से मध्य अटलांटिक महासागरीय श्रृंखला और मध्य हिंद महासागर पर्वत श्रृंखला।) पर तथा लाल सागर में पाई जाती हैं। सागर तली के मुखों में से फूट निकलने वाले उष्णालीय तरल सागर की तली पर धात्विक सल्फाइड (लोहा, तांबा और जस्ता निकलने वाले उष्णालीय तरल सागर की तली पर धात्विक सल्फाइड (लाोहा, तांबा और जस्ता सल्फाइड) तथा सल्फेट (बेरियम और कैल्शियम सल्फेट) खनिज जमा कर देते हैं। इसलिए इन मुखों के निकट के अवसादों में लोहा, मैंगनीज, चांदी, क्रोमियम, सीसा और जस्ता की उच्च मात्राएं मौजूद होती हैं।

गैस हाइड्रेट ऐसे यौगिक हैं जिनमें गैस अणु पानी के अणुओं के विस्तारित जाल के अंदर,

भौतिक रूप से, फंसे होते हैं। ये महाद्वीपीय ढलानों की, और गहरे सागर के उन क्षेत्रों की, जहाँ जमावट की दर उच्च होती है, और जहाँ कार्बनिक पदार्थों की मात्रा मध्यम (०.५ प्रतिशत) होती है, तली के नीचे उपलब्ध हो सकते हैं। सागर तली के गैस हाइड्रेट भविष्य में ऊर्जा के स्रोत सिद्ध हो सकते हैं। कृष्णा-गोदावरी अपतटीय बेसिन में १४०० वर्ग किलोमीटर के एक ऐसे क्षेत्र की पहचान कर ली गई है जहां गैस हाइड्रेट मिलने की संभावना है।

सोडियम और पौटेशियम क्लोराइडों को प्राप्त करने हेतु समुद्री पानी को वाष्पित किया जा सकता है। सऊदी अरब जैसे देशों में, जहाँ मीठा पानी की बेहद कमी है, पेयजल प्राप्त करने के लिए समुद्री पानी में से लवणों को अलग कर दिया जाता है। समुद्री पानी को कैल्शियम हाइड्रोक्साइड से उपचारित करने पर मैग्नीशियम हाइड्रोक्साइड अवक्षेपित हो जाता है। मैग्नीशियम हाइड्रोक्साइड का उपयोग धातु के निर्माण में किया जाता है। ब्रोमीन और आयोडीन प्राप्त करने के लिए समुद्री पानी को क्लोरीन गैस से उपचारित किया जाता है।

कैसे करते है हम सागरों का अन्वेषण?

समुद्र वैज्ञानिक अपने अध्ययनों के दौरान दो प्रश्नों को संबोधित करते हैं : ''सागरों में क्या

चित्र-४० : सागर अन्वेषण में प्रयुक्त यंत्र : (ऊपर) सैंसरों की व्यवस्था को खींचकर लानेवाला अनुसंधान पोत और सतह के निकट जाल ; (बाएं से दाएं) सुदूर नियंत्रित वाहन, गहराई मापन युक्ति; कंडक्टीवीटी-ताप-गहराई सेंसर जल सेम्पलर सहित; मैंगनीज पिंडकाओं के लिए बूमरेंग ग्रैब, अंतर्जलीय वीडियो और फोटो व्यवस्था, स्वचलित अंतर्जलीय वाहन, गहरे सागर मे मूरिंग

हो रहा है ?'' पहले प्रश्न का उत्तर सागरों के सावधानीपूर्वक प्रेक्षण से प्राप्त होता है और दूसरे का उत्तर इन प्रेक्षणों को प्रमाणित सैद्धांतिक फ्रेमवर्क के परिप्रेक्ष्य में रखकर, प्राप्त किया जाता है।

सागरों के प्रेक्षण के लिए समुद्रवैज्ञानिक विविध किस्मों के यंत्रों का उपयोग करते हैं। इन प्रेक्षणों की एक मूलभूत आवश्यकता होती है एक ऐसा प्लेटफार्म जिस पर प्रेक्षणों के लिए यंत्रों को स्थापित किया जा सके। वर्तमान में इस काम के लिए तीन प्रकार के प्लेटफार्मों का उपयोग किया जाता है। पहला है अनुसंधान जलपोत। यह जलपोत तैरती हुई प्रयोगशाला सदृश होता है जिसमें सागर के प्रेक्षण के लिए आवश्यक, सब यंत्र (ताप और लवणता मापने के यंत्र, विभिन्न गहराइयों से पानी के नमूने लेने हेतु बोतलें, सागर की तली के अन्वेषण हेतु युक्तियां आदि) मौजूद होते हैं। उसमें ऐसी सुविधाएं (निवास, भोजन और संचार आदिकी), भी उपलब्ध होती हैं कि समुद्रवैज्ञानिक, लगातार कुछ सप्ताह तक, सागर पर रह सकें। अनुसंधान जलयान सैम्पलिंग उपकरणों के उपयोग हेतु मशीनों, जीवशास्त्रीय अध्ययनों हेतु जाल, स्वचालित और सुदुर-नियंत्रित अंडरवाटर नौकाएं, प्रोफाइलर, फोटोग्राफी और वीडियो सिस्टमों से भी सुसज्जित होता है (चित्र-४०)।

समुद्रवैज्ञानिकों द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाला दूसरी किस्म का प्लेटफार्म ''लंगर'' (मूरिंग) कहलाता है। इसमें एक तार होता है जो सागर की तली से बंधा होता है और ''फ्लोटों'' की मदद से तना होता है। तार से अनेक यंत्र (करंट मीटर, ताप रिकार्डर, आदि) संलग्न होते हैं।

पिछले २५ वर्षों के दौरान सागरों के विविध पक्षों के अध्ययन हेतु हमारी क्षमता में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। अब हम उपग्रहों में स्थापित सैंसरों की मदद से महसागरों का अध्ययन कर सकते हैं। ये सैंसर केवल सागर की सतह के गुणों के बारे में ही सूचना प्रदान नहीं करते वरन् एक ही समय एक बड़े क्षेत्र का अवलोकन या उन प्रेक्षणों को नियमित अवकाश के बाद दोहराने की क्षमता भी रखता है। उनकी इस क्षमता ने सागर के अन्वेषण में बहुत योग दिया है।

सागर मे प्रयोग की गयी वैज्ञानिक शब्दावली

अन्तर्जलीय Submarine
अन्तर्जलीय फैन Submarine fan
अवतलन क्षेत्र Subduction zone
अवक्षेपण Precipitation
उष्णजलीय मुख Hydrothermal vent
क्रोड Core
खगोलीय पिंड Cosmic body
खनिज Mineral
गुरूत्वीय तरंगें Gravity waves
घनत्व Density
चक्रण Circulation
चक्रवात Cyclones
चुम्बकीय क्षेत्र Magnetic field
ज्वारनदमुख Estuary
ज्वारभाटा Tide
जलवायु Climate
जीव Organism
जैवविविधता Biodiversity
जैवभूरासायनिक Biogeochemical
ढ़ाल प्रवणता Gradiant
तटीय Coastal
तापमान Temperature
तूफान Storms
दोलन Oscillation
द्रवस्थैतिक Hydrostatic
द्विध्रुवीय Dipole
धारा Current
ध्रुव Pole

पपड़ी Crust
परिध्रुवीय धारा Circumpolar current
पवनज तरंगे Wind waves
पुलिन Beaches
प्रकाशसंश्लेषण Photosynthetic
प्रवार Mantle
प्रशान्त महासागर Pacific Ocean
प्राथमिक उत्पादक Primary producer
भूकम्प Earthquake
भूमध्यरेखा Equator
भूमध्य सागर Mediterranean Sea
महाद्वीप Continent
महाद्वीपीय ढ़लान Continental slope
महासागरीय पर्वत श्रंखला Oceanic ridges
महाद्वीपीय मर्जिन Continental margin
महाद्वीपीय शेल्फ Continental shelf
महासागर Ocean
महासागर तलहटी Ocean floor
मीठा पानी Fresh water
रसोसंश्लेषण Chemosynthesis
लवणता Salinity
लाल सागर Red sea
वायुमण्डलीय दबाव Atmosphere pressure
विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र Exclusive Economic Zone
स्थलमण्डलीय प्लेटें Lithospheric plates
सतह पर उभरना Upwells
समुद्रस्तर Sea leval
समुद्री पहाड़ Seamount
संतुलन Equilibrium
संयोजन Composition

राष्ट्रीय समुद्रविज्ञान संस्थान (एन.आई.ओ.) के बारे में

राष्ट्रीय समुद्रविज्ञान संस्थान (नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ ओशनोग्राफी - एन.आई.ओ.) कौंसिल ऑफ साइंटिफिक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च (सी.एस.आई.आर) की एक घटक प्रयोगशाला है। इसकी स्थापना १९६६ में हुई। इसका मुख्यालय गोवा में है तथा इसके क्षेत्रीय केन्द्र मुंबई, कोची और विशाखापत्तनम में स्थित हैं। उनमें से लगभग ११५ ने पी.एच.डी डिग्री प्राप्त की हुई है। वे समुद्रविज्ञान के विविध पहलुओं पर शोध कर रहे हैं।

एन.आई.ओ. में समुद्रवैज्ञानिक शोध के लिए प्रयोगशालाएं हैं, एक सुसज्जित पुस्तकालय है और एक तटीय अनुसंधान पोत, **सी.आर.वी. सागर सुक्ति है** जिसमें तटों के अध्ययन हेतु व्यवस्था है। एन.आई.ओ. में शोधकर्ता वास्तव में उन सब विषयों पर अध्ययन और शोध करतेहैं जिनकी विवेचना इस पुस्तिका में की गई है। इन अध्ययनों में से अनेक के लिए एन.आई.ओ. दो अन्य अनुसंधान पोतों **ओ.आर.वी सागर कन्या** और **एफ.ओ.आर.वी सागर संपदा** का उपयोग करता है। ये दोनों पोत महासागर विकास विभाग, भारत सरकार के हैं। महासागर विकास विभाग एन.आई.ओ. की अनेक अनुसंधान परियोजनाओं को धन प्रदान करता है।

एन.आई.ओ. औद्योगिक संस्थानों को उन मामलों में, जिनका सम्बन्ध समुद्री जलों से है, अपनी सेवाएं प्रदान करता है। वह समुद्रवैज्ञानिक आकड़ों के संग्रहण और उपचार में तथा विश्लेषी विधियों में प्रशिक्षण देता है। वह समुद्रविज्ञान और समुद्रप्रौद्योगिकी की अनेक शाखाओं में पाठ्यक्रम चलाता है। अनेक विद्यार्थी, एन.आई.ओ. के शोधकर्ताओं के निर्देशन में अपना शोध कार्य कर रहे हैं। यह संस्थान विभिन्न स्तरों पर (हाईस्कूल के बाद) विद्यार्थियों को उसमें उपलब्ध सुविधाओं का उपयोग करने के लिए अवसर प्रदान करता है। एन.आइ.ओ. के शोधकार्य और शोधकर्ताओं के बारे में (साथ ही उनसे सम्पर्क करने के बारे में भी) हमसे www.nio.org पर संपर्क करै।

.

हमारा पता है :

राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान
दोना पावला, गोवा - ४०३ ००४, भारत
फोन : ९१(०)८३२-२४५० ४५०
फैक्स : ९१(०) ८३२-२४५०६०२/६०३
ई-मेल : ocean@nio.org
URL : http:/www.nio.org

Blue Cube,Bicholim

NIO/P&R/2008